इड्ढि-सारो

(ऋद्धिसार)

मंगल आशीर्वाद :

परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसंत
आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज

ग्रंथकार :

आचार्य वसुनंदी मुनि

जिनशासन नायक भगवान् महावीर स्वामी के 2550वें निर्वाण महोत्सव पर परम पूज्य राष्ट्र हितैषी संत, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा वी. नि. सं. 2550-2551 (सन् नव. 2023-नव. 2024) को **''अहिंसकाहार वर्ष''** के रूप में उद्घोषित किया गया। इसी **''अहिंसकाहार वर्ष''** के उपलक्ष्य में प्रकाशित

ग्रंथ : इड्ढि-सारो (ऋद्धि सार)

मंगल आशीर्वाद : परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज

ग्रंथकार : आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

सम्पादन : आर्यिका वर्धस्वनंदनी

संस्करण : प्रथम (सन् 2024)

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : सदुपयोग

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ ग्रंथ माला समिति (रजि.)

ISBN : **978-93-94199-71-2**

प्राप्ति स्थल : सी 117 बेसमेंट सैक्टर 51, नोएडा-201301
मो. 9971548889, 9867557668, 8800091252

मुद्रक : मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली
मो. 9312401976

Visit us @ www.acharyavasunandi.com

संपादकीय

संसारी प्राणी के द्वारा मन-वचन-काय से किए पुरुषार्थ का फल उसकी उपलब्धि होता है। पुरुषार्थ मिथ्या होता है तो उपलब्धि भी मिथ्या व दुखद होती है। सम्यक् पुरुषार्थ के फल को सम्यक् उपलब्धि व सुख का साधन माना जाता है। असंयमी का पुरुषार्थ सांसारिक सुख के हेतु पुण्य के लिए तो होता है किन्तु असंयमी दशा में रहते हुए मोक्षमार्गी नहीं बना जा सकता। जबकि संयमी का नि:कांक्ष निदान रहित तप कर्म वन को दहन करने में समर्थ कारण है।

निश्चय रत्नत्रयधारी साधक शुद्धध्यान के बल से कर्म (गहन) विपिन को उत्तुंग लपटों से युक्त दावानल से क्षणार्द्ध में भस्म करने में समर्थ होते हैं। किंचित् राग उदय में आ जाए तो संसार के उत्कृष्ट इंद्रादि पदों को प्राप्त कर अनंतर मोक्ष प्राप्त कर पाते हैं। कृषक कृषि करते समय भाव तो उत्तम धान्य प्राप्त करने का ही रखता है किन्तु वह धान्य बिना पलाल के संभव नहीं। आचार्य गुरुदेव ने इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया है–

ण कंखेमि इड्ढीओ, जम्हा सस्सियस्स पलालं व।
जह सो कंखदि धण्णं, तह जोगी सिवपदं मेत्तं॥7॥

मैं ऋद्धियों की आकांक्षा नहीं करता क्योंकि वह कृषक के भूसे के समान है। जिस प्रकार वह कृषक धान्य की आकांक्षा करता है उसी प्रकार योगी मात्र मोक्षपद की आकांक्षा करता है।

गोपालक धेनु सेवा करते हुए उत्तम घृत पाने की लालसा रखता हुआ प्रारम्भ में तो क्षीर को ही ग्रहण करता है, उद्योगपति अपने कारखाने में वस्तु का निर्माण कराते-कराते उसकी किस्म उत्तरोत्तर श्रेष्ठ बना सकता है। क्या कुम्भकार प्रारम्भ में ही श्रेष्ठतम कुम्भ बना लेता है? नहीं। चित्रकार भी सर्वश्रेष्ठ चित्र का रेखांकन प्रथम बार में नहीं कर पाता। एक कवि भी अभ्यास करते-करते अपनी कविताओं में रसालंकारादि की वृद्धि करता जाता है। कलधौत की खदान में प्रथम बार ही शुद्ध हाटक नहीं मिल पाता, वज्राकर में वज्र की संप्राप्ति के पूर्व कंकड़-पत्थरादि भी प्राप्त होते हैं। इसी तरह साधक की साधना सर्वकर्म रहित शिवत्व को प्राप्त करने की होती है किन्तु उसके पूर्व घास-फूस वा पलाल की तरह या वज्राकर में निकली हुई कंकरीट राशि की तरह ऋद्धियाँ भी होती हैं। जिनकी कांक्षा, अभीप्सा वा लालसा वे महामुनि किंचित् भी नहीं करते। इतना ही नहीं अनेक बार तो उन्हें अपनी ऋद्धियों का परिज्ञान भी नहीं होता। प्रत्यक्ष उपयोग करने पर ही वे जान पाते हैं कि उन्हें वे ऋद्धि प्राप्त हुई हैं।

ऋद्धियाँ महातपस्वी साधकों की उत्कृष्ट व श्रेष्ठ तपस्या का फल है। ऋद्धि व उपलब्धि दोनों एकार्थवाची शब्द भी कहे जा सकते हैं। लौकिक वस्तु की संप्राप्ति को लब्धि या उपलब्धि कहते हैं जबकि चेतना के क्षितिज पर ज्योतिर्ग्रहों के समान तपोदित विशिष्ट उपलब्धियाँ ऋद्धि कही जाती हैं।

ऋद्धियों का सार लोकरंजन वा मन-रंजन के लिए नहीं अपितु चेतना को निरंजन बनाने के लिए होना चाहिए। गाथाओं

में निबद्ध प्रस्तुत ''इड्ढि-सारो'' नामक ग्रन्थ परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी राष्ट्रहितैषी आचार्य भगवन् श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा रचित चेतना में आह्लाद उत्पन्न करने वाला अनुपम ग्रन्थ है। ग्रंथ के नाम से ही उसमें निहित विषय का परिज्ञान हो जाता है। गुरुवर श्री ने समस्त ऋद्धियों व उनके स्वरूप को दर्शाकर उन समस्त ऋद्धि व ऋद्धिधारक ऋषिराजों को नमस्कार किया है। जिन कारिकाओं को पढ़कर ऋद्धि स्वरूप का ज्ञान तो होता ही है साथ ही नमस्कार कर सातिशय पुण्य का आस्रव भी होता है। स्वरूप का निरुपण करते हुए ऋद्धि व ऋद्धिधारक श्रमणों को नमस्कार कर ग्रंथ रचना करना आचार्य श्री का अत्यंत अद्‌भुत विचार है।

यद्यपि आचार्य श्री द्वारा की गई प्राकृत ग्रन्थों की रचना ने सम्पूर्ण साहित्य जगत् में हलचल उत्पन्न कर ही दी है। वर्तमान में प्राकृत भाषा का नाम सबकी जिह्वा पर लाना, लोगों में उसे सीखने हेतु उत्सुकता व उल्लास उत्पन्न करने एवं भाषा के प्रति वर्तमान पीढ़ी को आकृष्ट करने में आचार्य श्री की प्रेरणा एवं उनके प्राकृत ग्रंथों का महत्वपूर्ण योगदान है।

भाषा की दृष्टि से तो ये ग्रंथ महत्वपूर्ण है ही, साथ ही वर्तमान के साथ भविष्य में यह समस्त श्रुत जिनशासन का आधार होगा। यह जिनशासन को जीवंतता, जैन संस्कृति को संरक्षित व संवर्धित करेगा।

प्रस्तुत ग्रंथ **''इड्ढि-सारो''** अर्थात् ऋद्धिसार के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़े, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ग्रंथाध्ययन करें। जन-जन के श्रद्धापुंज परमपूज्य राष्ट्रहितैषीसंत, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर

श्री वसुनंदी जी महाराज का संयम, तप, ज्ञान व साधना का सौरभ सहस्रों वर्षों तक विश्व को सुरभित करता रहे। गुरुवर श्री को आरोग्य लाभ हो एवं अपने लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करें। परमपूज्य गुरुवर श्री के चरणों में सिद्ध-श्रुत-मेआचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु!.....

''जैनम् जयतु शासनम्''

श्री शुभमिति माघ शुक्ल त्रयोदशी — ॐ अर्हं नमः

श्री वीर निर्वाण संवत् 2550 — **आर्यिका वर्धस्वनंदनी**

गुरुवार 22.2.2024

अतिशय क्षेत्र तिजारा जी, (राजस्थान)

'इड्ढि-सारो' की भावभूमि और माहात्म्य

–डॉ. पंकज जैन शास्त्री, इन्दौर

''इड्ढि-सारो'' एक अनुपम कृति है। यह कृति जैन श्रमण साधना की सर्वोत्तम फलश्रुति का मंगलगान है। इस कृति के कृतिकार आचार्य वसुनंदी मुनिराज स्वयं एक अप्रतिम निकांक्षित तपस्वी साधक हैं। आप अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी हैं और प्राकृत भाषा के महोदधि हैं। आपकी विपुल प्राकृत रचनाओं में 'इड्ढि-सारो' भले ही एक लघुकाय कृति हो, परन्तु विषय वैशिष्ट्य और अनूठी रचना शैली के कारण इस अभिनव प्राकृत काव्य कृति का अमिट स्थान विज्ञ स्वाध्यायी श्रावकों और विद्वानों के हृदय में सुनिश्चित है।

आचार्यश्रेष्ठ श्री वसुनंदी मुनिराज जैनागम के चारों अनुयोगों के तलस्पर्शी ज्ञाता हैं। आप जैनसिद्धान्त के मर्मज्ञ होने के साथ-साथ उसके गहन चिंतक भी हैं। आपका चिंतन निराधार नहीं है वह सदैव साधना की यथार्थ अनुभूतियों की उर्वरा भूमि पर प्रस्फुटित होता है। आपके इसी असाधारण चिंतन से चौंसठ ऋद्धियों पर केन्द्रित काव्य कृति की रचना का विचार उद्भूत हुआ है। अद्यावधि उपलब्ध जैन वाङ्मय में ऋद्धियों पर केन्द्रित प्राकृत गाथाओं में निबद्ध इस प्रकार की प्रामाणिक कृति का नितान्त अभाव था। जिसकी संपूर्ति आचार्य श्री वसुनंदी मुनिराज ने 'इड्ढि-सारो' का सृजन करके की है।

श्रुत सपर्या की दृष्टि से कृतिकार आचार्य श्री वसुनंदी मुनिराज का यह अभूतपूर्व सारस्वत अवदान है।

यदि विषय की दृष्टि से इस कृति पर दृष्टिपात किया जाए तो यह कृति निर्विवादरूप से जैन सिद्धान्त की मूल परम्परा की संरक्षिका और संवाहिका है। जैन आगम के तिलोय पण्णत्ति, धवला एवं राजवार्तिक आदि मूल ग्रन्थों में श्रमणों को तपश्चरण की फलश्रुति के रूप में प्रकट होने वाली बुद्धि, विक्रिया, तप, बल, औषधि, रस एवं अक्षीण नामक सात प्रकार की ऋद्धियों का भेद-प्रभेद के साथ वर्णन है।

उपर्युक्त सात ऋद्धियों के भेद पूर्वक प्रकट होने वाली चौंसठ ऋद्धियों से सम्पन्न ऋषियों की भावपूर्वक वन्दना एवं अर्चना प्रतिदिन नित्यनियम पूजन में ''स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः'' उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि क्षेपण करके की जाती है। कृतिकार आचार्यश्री वसुनन्दी मुनिराज ने 'इड्ढि-सारो' ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में भी ऋद्धिधारक परम तपस्वी मुनिराजों को श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए लिखा है कि-

णमो जिणाणं दु सव्वइड्ढीणं तह धारग-समणाणं।
इड्ढी ण मे सहावो, इड्ढिरहिद-सिद्धोव्व हु सया॥2॥

अर्थात् सभी जिनों, सर्व ऋद्धि एवं ऋद्धिधारक श्रमणों को नमस्कार हो। ऋद्धियाँ मेरा स्वभाव नहीं हैं, मेरा स्वभाव सदैव ऋद्धिरहित सिद्धों के समान है।

वीतराग जैन धर्म की यह मौलिक विशेषता है कि जैन तीर्थंकरों ने ''तपसा निर्जरा च'' का उपदेश देकर स्पष्टरूप से भव्य जीवों को इस सम्यक् मार्ग का निरूपण किया है कि

तप के द्वारा कर्मों का संवर और निर्जरा होती है। कर्मक्षय मात्र सम्यक् तप से ही होता है। सम्यक् तप करने वाले तपस्वी श्रमण तप के फल के रूप में किसी सांसारिक लाभ या चमत्कार की आकांक्षा नहीं करते हैं। जिस तप के फल के रूप में कोई सांसारिक सिद्धि की कामना की जाती है वह कुतप है, मिथ्या तप है। मिथ्या तप से कभी भी ऋद्धियाँ प्रकट नहीं होती हैं। ऋद्धियाँ तो निष्काम भाव रखने वाले किसी विशेष तपस्वी साधु को ही प्रकट होती हैं। मुक्ति पथ के पथिक महा मुनिराजों को तो तप के प्रभाव से प्रकट ऋद्धियों का भान भी नहीं रहता है। तप का मूल हेतु तो संसार के बीजरूप कर्मों का क्षय करना ही है, परन्तु जिस प्रकार अग्नि एक है तो भी उसके विक्लेदन, भस्म और अंगार आदि अनेक कार्य उपलब्ध होते हैं उसी प्रकार तप ऋद्धिरूप अभ्युदय और कर्मक्षय इन दोनों का हेतु है।

'इड्ढि-सारो' ग्रन्थ का कुशल सम्पादन आचार्यश्री की सुयोग्य शिष्या आर्यिका वर्धस्व नंदनी माताजी ने किया है। माताजी जैसी विलक्षण मेधा, गुरुभक्ति, विनम्रता, सरलता और वाणी में माधुर्य इस कलिकाल में दुर्लभ है। कृतिकार आचार्यवर्य परमपूज्य वसुनंदी मुनिराज ससंघ के चरणों में बारम्बार भक्तिपूर्वक नमन करता हूँ। साथ ही ग्रन्थ की संपादिका परम विदुषी आर्यिका वर्धस्व नंदनी माता जी की कृतज्ञ भावों से 'वंदामि' पूर्वक वंदना करता हूँ।

अनुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
1.	मंगलाचरण	1-2	1
2.	ग्रंथ प्रतिज्ञा	3	1
3.	तप का फल	4	1
4.	तप का माहात्म्य	5	2
5.	सम्यक् तप से ही आत्मशुद्धि	6	2
6.	तपस्वी प्रशंसा	7	2
7.	किसके नहीं ऋद्धि?	8	3
8.	अनाकांक्षित भाव	9	3
9.	पर-उपकारी ऋद्धि	10	3
10.	ऋद्धि-भेद	11	3
11.	केवलज्ञान ऋद्धि	12-14	4
12.	अवधिज्ञानऋद्धि	15-16	4
13.	देशावधिज्ञान ऋद्धि	17	5
14.	परमावधिज्ञान ऋद्धि	18	5
15.	सर्वावधिज्ञान ऋद्धि	19	6
16.	अनंतावधिज्ञान ऋद्धि	20-21	6
17.	ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान ऋद्धि	22	6

क्रम सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
18.	विपुलमति मन:पर्ययज्ञान ऋद्धि	23	7
19.	कोष्ठबुद्धि ऋद्धि	24	7
20.	बीजबुद्धि ऋद्धि	25	7
21.	पदानुसारी बुद्धि ऋद्धि	26	7
22.	अनुसारिणी बुद्धि ऋद्धि	27	8
23.	प्रतिसारिणी बुद्धि ऋद्धि	28	8
24.	उभयसारिणी बुद्धि ऋद्धि	29	8
25.	संभिन्न संश्रोतृत्व ऋद्धि	30-32	9
26.	दूरास्वादित्व ऋद्धि	33-34	9
27.	दूरस्पर्शत्व ऋद्धि	35-36	10
28.	दूरघ्राणत्व ऋद्धि	37-38	10
29.	दूरदर्शित्व ऋद्धि	39-40	11
30.	दूरश्रवणत्व ऋद्धि	41-42	11
31.	प्रज्ञाश्रमण बुद्धि ऋद्धि	43-44	11
32.	प्रज्ञाश्रमण बुद्धि ऋद्धि भेद	45	12
33.	औत्पत्तिकी बुद्धि	46	12
34.	पारिणामिकी बुद्धि	47	12
35.	वैनयिकी बुद्धि	48	13
36.	कर्मजा बुद्धि	49-50	13

क्रम सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
37.	वादित्व ऋद्धि	51	13
38.	चौदहपूर्वित्व ऋद्धि	52	14
39.	भिन्नदसपूर्वी ऋद्धि	53	14
40.	अभिन्नदसपूर्वी ऋद्धि	54	14
41.	स्वयंबुद्ध ऋद्धि	55	14
42.	प्रत्येकबुद्धि ऋद्धि	56-57	15
43.	अष्टांग महानिमित्त ऋद्धि	58	15
44.	निमित्त के आठ अंग	59	15
45.	अंग निमित्तज्ञान	60	16
46.	स्वर निमित्तज्ञान	61	16
47.	व्यंजन निमित्तज्ञान	62	16
48.	छिन्न निमित्तज्ञान	63	16
49.	भौम निमित्तज्ञान	64	17
50.	लक्षण निमित्त ज्ञान	65	17
51.	अंतरिक्ष निमित्तज्ञान	66	17
52.	स्वप्न निमित्तज्ञान	67	17
53.	स्वप्न भेद व स्वरूप	68-70	18
54.	विक्रिया ऋद्धि व भेद	71	18
55.	श्रमण ऋद्धियों का ही कथन	72	18

क्रम सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
56.	पृथक् अपृथक् विक्रियाऋद्धि	73-74	19
57.	विक्रिया ऋद्धि भेद	75-76	19
58.	अणिमा ऋद्धि	77	20
59.	महिमा ऋद्धि	78	20
60.	लघिमा ऋद्धि	79	20
61.	गरिमा ऋद्धि	80	20
62.	प्राप्ति ऋद्धि	81	21
63.	प्राकाम्य ऋद्धि	82-84	21
64.	ईशत्व ऋद्धि	85-86	22
65.	वशित्व ऋद्धि	87-88	22
66.	कामरूपित्व ऋद्धि	89	23
67.	अप्रतिघात ऋद्धि	90	23
68.	अंतर्धान ऋद्धि	91	23
69.	क्रियाचारण ऋद्धि व भेद	92	24
70.	आकाशगामित्व ऋद्धि	93	24
71.	चारण ऋद्धि	94	24
72.	चारणऋद्धि भेद	95-96	24
73.	धाराचारण ऋद्धि	97	25
74.	अग्निचारण ऋद्धि	98	25

क्रम सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
75.	मेघचारण ऋद्धि	99	26
76.	मारुत् चारण ऋद्धि	100	26
77.	तंतुचारण ऋद्धि	101	26
78.	फलचारण ऋद्धि	102	26
79.	पुष्पचारण ऋद्धि	103	27
80.	बीजचारण ऋद्धि	104	27
81.	पत्रचारण ऋद्धि	105	27
82.	जलचारण ऋद्धि	106	28
83.	जंघाचारण ऋद्धि	107	28
84.	नभचारण ऋद्धि	108	28
85.	श्रेणीचारण ऋद्धि	109	28
86.	ज्योतिषचारण ऋद्धि	110	29
87.	धूमचारण ऋद्धि	111	29
88.	तप ऋद्धि व भेद	112-113	29
89.	उग्रतप ऋद्धि भेद	114	30
90.	उग्रोग्र तप ऋद्धि	115-116	30
91.	अवस्थित तप ऋद्धि	117-119	30
92.	घोरतप ऋद्धि	120	31
93.	घोरपराक्रम तप ऋद्धि	121-122	31

क्रम सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
94.	अघोरब्रह्मचर्य ऋद्धि	123-124	32
95.	तप्ततप ऋद्धि	125	32
96.	दीप्ततप ऋद्धि	126	33
97.	महातप ऋद्धि	127	33
98.	बल ऋद्धि भेद	128	33
99.	मनोबल ऋद्धि	129-130	33
100.	वचनबल ऋद्धि	131-132	34
101.	कायबल ऋद्धि	133-134	34
102.	औषधि ऋद्धि व भेद	135-136	35
103.	आमर्षौषधि ऋद्धि	137	35
104.	जल्लौषधि ऋद्धि	138	35
105.	मलौषधि ऋद्धि	138	36
106.	विप्रौषधि ऋद्धि	140	36
107.	क्ष्वेलौषधि ऋद्धि	141	36
108.	सर्वौषधि ऋद्धि	142	37
109.	वचननिर्विष ऋद्धि	143-144	37
110.	दृष्टिनिर्विष ऋद्धि	145	37
111.	रसऋद्धि भेद	146	38
112.	शुभाशुभ आशीर्विष ऋद्धि	147-148	38

क्रम सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
113.	शुभाशुभ दृष्टिविष ऋद्धि	149-150	38
114.	क्षीरस्रावी ऋद्धि	151	39
115.	मधुस्रावी ऋद्धि	152	39
116.	सर्पिस्रावी ऋद्धि	153	39
117.	अमृतस्रावी ऋद्धि	154	40
118.	क्षेत्रऋद्धि भेद	155	40
119.	अक्षीणमहानस श्रद्धि	156-157	40
120.	अक्षीणमहालय ऋद्धि	158	41
121.	रत्नत्रय युक्त ऋद्धि की दुर्लभता	159	41
122.	भवतारक-जिनत्व	160-161	41
123.	ग्रंथ फल	162	42
124.	ऋद्धिधारियों की वंदना	163	42
125.	अंतिम मंगलाचरण	164-170	42-43
126.	ग्रंथकार लघुता	171-172	44
127.	ग्रंथ-प्रशस्ति	173-174	44

आचार्य वसुनंदी मुनिराज कृत

इड्ढि-सारो (ऋद्धिसार)

मंगलाचरण

सम्मतवेणं जीवो, कम्मं खयिदुं सव्वदा समत्थो।
तेण जेहि लहिदं णिय-सरूवं ते सुतवं वंदे॥1॥

सम्यक् तप से जीव सदैव कर्मों का क्षय करने में समर्थ होता है। जिनके द्वारा उस तप से निज स्वरूप को प्राप्त किया गया, उन निर्ग्रन्थों को व सम्यक् तप को वंदन करता हूँ।

णमो जिणाणं दु सव्वइड्ढीणं तह धारग-समणाणं।
इड्ढी ण मे सहावो, इड्ढिरहिद-सिद्धोव्व हु सया॥2॥

सभी जिनों, सर्व ऋद्धि एवं ऋद्धि धारक श्रमणों को नमस्कार हो। ऋद्धियाँ मेरा स्वभाव नहीं है, मेरा स्वभाव सदैव ऋद्धि रहित सिद्धों के समान है।

ग्रंथ प्रतिज्ञा

तवस्स लोगिगफलं दु, दिस्सदि लोए बहुइड्ढि-रूवेण।
वोच्छामि इड्ढिसारं गुरुचरणं धरिय मम हिअये॥3॥

बहुत ऋद्धि रूप से तप का लौकिक फल लोक में देखा जाता है। अपने हृदय में गुरुचरण को धारण कर मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) 'इड्ढिसारो' ऋद्धिसार नामक ग्रंथ को कहता हूँ।

तप का फल

इड्ढी हु णाम-लद्धी, देवाणं वि होज्ज बहुपयारा।
पच्छिमफलं तवस्स हु, संपइ य केवलणाणादी॥4॥

ऋद्धि नाम लब्धि का है। देवों के भी बहुत प्रकार की ऋद्धियाँ होती हैं। किन्तु वे तप के बाद का फल है और वर्तमान फल केवलज्ञान आदि है।

तप का माहात्म्य

णाणसिद्धी तवेणं, सुद्धप्पझाणं संभवो तवेणं।
तवेण कम्मं खयंति, तवो मुत्तिकारणं णियमा॥5॥

तप से ज्ञान की सिद्धि होती है, तप से शुद्धात्मध्यान संभव है, तप से कर्म क्षय होते हैं और तप नियम से मुक्ति का कारण है।

सम्यक् तप से ही आत्मशुद्धि

जो सुतवं णहि कुव्वदि, मिच्छातवं भमदि सो संसारे।
सुद्धप्पं पावेदुं, तवेण विणा ण सक्को को वि॥6॥

जो जीव सम्यक् तप नहीं करता, अपितु मिथ्यातप ही करता है वह संसार में परिभ्रमण करता है। तब के बिना शुद्धात्मा को प्राप्त करने में कोई भी समर्थ नहीं होता।

तपस्वी प्रशंसा

जहाजाद-दियंबरो, विवज्जिदो विसयकसायपावादु।
रयणत्तय-जुत्तो जो, सो तवस्सी पसंसणीयो॥7॥

जो विषय-कषाय व पापों से रहित व रत्नत्रय से युक्त यथाजात दिगंबर मुनिराज हैं, वे तपस्वी प्रशंसनीय हैं।

किसके नहीं ऋद्धि?

अव्वदी मिच्छादिट्ठी, णेव पावंति तिव्वकसायजुदो।
सिवहेदू इड्ढी अह, सिद्धा अवि सव्विड्ढि-रहिदा॥8॥

अव्रती मिथ्यादृष्टि तीव्र कषाय से युक्त जीव मोक्ष की हेतुभूत ऋद्धि को प्राप्त नहीं करते। सिद्ध भी सर्व ऋद्धियों से रहित हैं।

अनाकांक्षित भाव

ण कंखेमि इड्ढीओ, जम्हा सस्सियस्स पलालं व।
जह सो कंखदि धण्णं, तह जोगी सिवपदं मेत्तं॥9॥

मैं ऋद्धियों की आकांक्षा नहीं करता क्योंकि वह कृषक के भूसे के समान है। जिस प्रकार वह कृषक धान्य की आकांक्षा करता है उसी प्रकार योगी मात्र मोक्षपद की आकांक्षा करता है।

पर-उपकारी ऋद्धि

अक्कपयासो मिअंग-जुण्हा रुक्खफलं सरिदाणीरं।
परोवयारस्स होंति, जह तह इड्ढी तवस्सीणं॥10॥

जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश, चंद्रमा की ज्योत्स्ना, वृक्ष के फल व नदी का नीर परोपकार के लिए होते हैं उसी प्रकार तपस्वियों की ऋद्धि भी परोपकार के लिए होती है।

ऋद्धि-भेद

बुद्धि-विकिरिया-तव-बल-ओसही-रस-अक्खीणाण भेयादो।
पाहण्णेण सत्तविह-इड्ढी ताण धारगा थुवमि॥11॥

बुद्धि, विक्रिया, तप, बल, औषधि, रस व अक्षीण के भेद से प्रधानता से ऋद्धियाँ सात प्रकार की होती हैं। उन ऋद्धियों की व उनके धारकों की मैं स्तुति करता हूँ।

केवलज्ञान ऋद्धि

विअडदि केवलणाणं, मदिणाणावरणादि-विणासेणं।
तं इड्ढिधारगा अवि, पणमामि णिगामभत्तीए॥12॥

पाँच प्रकार के मतिज्ञानावरणादि के नाश से केवलज्ञान प्रकट होता है। उस केवलज्ञान ऋद्धि व केवलज्ञान ऋद्धि के धारकों को मैं अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ

लोयालोयस्स तियालिय-सव्वदव्वगुणपज्जायाणं।
जुगवं जाणग-केवलणाण-इड्ढि-मरिहा पणमामि॥13॥

लोक व अलोक के तीनों कालों के सर्व द्रव्य, गुण, पर्यायों को युगपत् जानने वाला ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है। उस केवलज्ञान ऋद्धि व उसके धारक अरिहंतों को नमस्कार करता हूँ।

सत्तविह-केवलीण, णमो अरिहंताणं सव्वाणं।
गणहराण देहमुत्त-परमप्पाणं तिजोगेहिं॥14॥

सात प्रकार के केवली, सभी अरिहंत, गणधर व शरीर रहित परमात्माओं को तीनों योगों से नमस्कार हो।

अवधिज्ञानऋद्धि

दव्वाइ - चदुट्ठय - मज्जादाजुत्तोहि - णाणावरणस्स।
खओवसमेण पगडोहिणाणं धारगा वंदे॥15॥

द्रव्यादि चतुष्टय अर्थात् द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादा से युक्त अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम से प्रकट अवधिज्ञान व उस अवधिज्ञान के धारक मुनिराजों की वंदना करता हूँ।

चदुविहं ओहिणाणं, देस-परम-सव्व-अणंतोही तह।
अच्चेमि इमा सव्वा, इड्ढी ताण धारग-जदी वि॥16॥

देशावधि, परमावधि, सर्वावधि तथा अनंतावधि के भेद से अवधिज्ञान चार प्रकार का जानना चाहिए। इन सभी ऋद्धि व ऋद्धि धारक यतियों की मैं अर्चना करता हूँ।

देशावधिज्ञान ऋद्धि

छव्विह-देसोही अणुगामी वड्ढमाणवड्ढिद इदरा।
सदेसोहि-देसोहिं, तस्स धारगा अभिणंदामि॥17॥

देशावधि ज्ञान छः प्रकार का जानना चाहिए—अनुगामी, वर्द्धमान, अवस्थित व इससे इतर अर्थात् अननुगामी, हीयमान व अनवस्थित। जो देश अवधि अर्थात् मर्यादा से युक्त है वह देशावधि ज्ञान है। उस देशावधि ज्ञान व उसके धारक ऋषिराजों की मैं स्तुति करता हूँ।

परमावधिज्ञान ऋद्धि

जस्स मज्जादा असंखेज्जलोयमेत्त - संजमवियप्पा।
तं अप्पडिपादि-परम-ओहिणाणं धारगा थुवमि॥18॥

अंसख्यात लोकमात्र संयम भेद ही जिस ज्ञान की मर्यादा है वह परमावधि ज्ञान कहलाता है एवं वह अप्रतिपाती ही होता है। उस परमावधि ज्ञान ऋद्धि व ऋद्धि धारक ऋषिराजों की मैं स्तुति करता हूँ।

सर्वावधिज्ञान ऋद्धि

जस्स मज्जादा सव्व-पोग्गलदव्वा सव्वोहिणाणं दु।
अप्पडिपादिं च तस्स, धारगा किट्टेमि भत्तीइ॥19॥

सर्व पुद्गल द्रव्य जिसकी मर्यादा है उस अप्रतिपाती सर्वावधिज्ञान व उस ज्ञान के धारकों की भक्तिपूर्वक स्तुति करता हूँ।

अनंतावधिज्ञान ऋद्धि

पुण्णणाणं व अणंत-अत्था णादुं सक्क-मणंतोहिं।
अंत-ओहि-सहिदं जं, तं वंदे तस्स धारगा वि॥20॥

जो केवलज्ञान के समान अनंत पदार्थों को जानने में समर्थ है, अवधि अर्थात् मर्यादा से रहित है उस अनंतावधि ज्ञान व उसके धारकों की मैं वंदना करता हूँ।

ओहिणाण - संबंधिद-असंखेज्जविहइड्ढीण सरूवो।
भणिदो ता धारगा वि, णमामि परमभावसुद्धीइ॥21॥

अवधिज्ञान से संबंधित असंख्यात प्रकार की ऋद्धियों का स्वरूप कहा गया है। उन सभी ऋद्धियों और ऋद्धि-धारकों को परमभावशुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान ऋद्धि

उजुमणवयणतणजणिद-सरलचित्तस्स वियार-जाणगं च।
उजुमदि-इड्ढिं वंदे, इड्ढि-धारग-जदिराया अवि॥22॥

सरल मन, वचन, काय जनित दूसरों के चित्त के सरल विचारों को जानने वाली ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान ऋद्धि व उस ऋद्धि के धारक यतिराजों की मैं वंदना करता हूँ।

विपुलमति मनःपर्ययज्ञान ऋद्धि

उजुवक्कतिजोगजणिद-परचित्तस्सवियार-विआणगंच।
विउल-मदिं णमंसामि, धारगा वि दुग्गुणं खयिदुं।।23।।

ऋजु व वक्र तीनों योगों से जनित दूसरों के चित्त के विचार को जानने वाले विपुलमति मनःपर्ययज्ञान व ऋद्धिधारकों को दुर्गुणों के क्षय के लिए नमस्कार करता हूँ।

कोष्ठबुद्धि ऋद्धि

उक्किट्ठ-धारणाए, धारेदि असंखदव्वपज्जाया।
विणा मिस्सेणं कोट्ठ-सम-बुद्धि-कोट्ठबुद्धिं थुवमि।।24।।

उत्कृष्ट धारणा से जीव असंख्यात द्रव्य-पर्यायों को मिश्रण के बिना बुद्धि में धारण करता है। ऐसी कोठे के समान बुद्धि रूप कोष्ठबुद्धि ऋद्धि की मैं स्तुति करता हूँ।

बीजबुद्धि ऋद्धि

णोइंदिय-सुदणाणावरण-वीरिय-विग्घ-खओवसमादु।
पुण्णसुदगाहगबीय-इड्ढी लहिय इगबीयपदं।।25।।

नोइंद्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण व वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से एक बीज पद को प्राप्त कर उस पद के आश्रय से पूर्ण श्रुत को ग्रहण करने वाली बीजबुद्धि ऋद्धि है।

पदानुसारी बुद्धि ऋद्धि

जा हु पदं अणुसरदे, सा पदाणुसारी इड्ढी तिविहा।
अणुसारी पडिसारी, उहयसारी य जिणुद्दिट्ठा।।26।।

जो पद का अनुसरण करती है वह पदानुसारी ऋद्धि जिनेन्द्र प्रभु के द्वारा तीन प्रकार की निर्दिष्ट की गई है–अनुसारी, प्रतिसारी और उभयसारी।

अनुसारिणी बुद्धि ऋद्धि

गुरुवरेण आदि-मज्झ-अवसाणे एगबीयपदं गहिय।
जाणदि उवरिमगंथं, तं अणुसारिं च णमंसामि॥27॥

गुरुवर के द्वारा आदि-मध्य वा अंत में एक बीजपद को ग्रहण करके उपरिम ग्रंथ को जानती है, उस अनुसारिणी बुद्धि ऋद्धि को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रतिसारिणी बुद्धि ऋद्धि

गहिय इगबीयपद-मादिमज्झवसाणे गुरुवदेसेणं।
जाणदि हेट्ठिमगंथं, पडिसारिं तं अभिणंदेमि॥28॥

गुरु के उपदेश से आदि, मध्य अथवा अंत में एक बीज पद को ग्रहण कर जो बुद्धि अधस्तन (पीछे वाले) ग्रंथ को जानती है उस प्रतिसारिणी बुद्धि ऋद्धि को मैं नमस्कार करता हूँ।

उभयसारिणी बुद्धि ऋद्धि

णियमाणियमेण एग-बीयपदं गहिय संविददि जुगवं।
उवरिमहेट्ठिम - गंथं, तं उहयसारिं च वंदामि॥29॥

जो नियम वा अनियम से एक बीजपद को ग्रहण कर उपरिम और अधस्तन अर्थात् उस पद के आगे व पीछे के सर्व ग्रंथ को एक साथ जानती है उस उभयसारिणी बुद्धि ऋद्धि की मैं वंदना करता हूँ।

संभिन्न संश्रोतृत्व ऋद्धि

सोदिंदिय - सुदणाणावरण - वीरियंतरायाण।
वरखओवसमादो य, उदिदे अंगोवंग-णामे॥30॥

सोदुक्किट्ठ-खेत्तादु, बहिर-संखेज्ज-जोयण-खेत्तम्मि।
अक्खरणक्खरसव्वं,झुणिंसुणियठिदणरतिरियाण॥31॥

जुगवं पडिमंतेदि संभिण्णसोदित्त - संधारगो य।
इड्ढिं ताइ धारगा, परियंदामि सुहभावेहिं॥32॥ (तिगं)

श्रोत्रेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय के उत्कृष्ट क्षयोपशम से तथा अंगोपांग नामकर्म का उदय होने पर श्रोत्रेन्द्रिय के उत्कृष्ट क्षेत्र से बाहर संख्यात योजन प्रमाण क्षेत्र में स्थित सभी मनुष्यों व तिर्यंचों के अक्षर व अनक्षरात्मक सर्व ध्वनियों को सुनकर एक साथ उत्तर देते हैं वे संभिन्न संश्रोतृत्व ऋद्धि को धारण करने वाले हैं। उस संभिन्नश्रोतृत्व ऋद्धि व उसको धारण करने वाले ऋषिराजों को मैं शुभभावों से प्रणाम करता हूँ।

दूरास्वादित्व ऋद्धि

रसणिंदिय - सुदणाणावरण - वीरियंतरायाण।
वरखओवसमादो य, उदिदे अंगोवंगणामे॥33॥

रसणुक्किट्ठ-खेत्तादु, बहिरे संखेज्जजोयणपदेसे।
ठिदरससादं बुज्झदि,दूरसादित्तं पणमामि य॥34॥(जुम्मं)

रसनेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के उत्कृष्ट क्षयोपशम से तथा अंगोपांग नामकर्म का उदय होने पर जो रसनेन्द्रिय के उत्कृष्ट क्षेत्र से बाहर संख्यात योजनों प्रदेश में स्थित रस

का स्वाद जानती है उस दूरास्वादित्व ऋद्धि और उसके धारक श्रमणों को मैं नमस्कार करता हूँ।

दूरस्पर्शत्व ऋद्धि

फासिंदिय - सुदणाणावरण - वीरियंतरायाण।
वरखओवसमादो य, उदिदे अंगोवंगणामे॥35॥

फासुक्किट्ठ - खेत्तादु - बहिरे संखेज्जजोयणपदेसे।
जाणदि ठिद-फासाणि, दूरफासत्तं णमंसामि॥36॥ (जुम्मं)

स्पर्शनेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय के उत्कृष्ट क्षयोपशम से एवं अंगोपांग नामकर्म का उदय होने पर स्पर्शनेन्द्रिय के उत्कृष्ट क्षेत्र से बाहर संख्यात योजनप्रदेश में स्थित स्पर्श को जो जानती है उस दूरस्पर्शत्व ऋद्धि को मैं नमस्कार करता हूँ।

दूरघ्राणत्व ऋद्धि

घाणिंदिय - सुदणाणावरण - वीरियंतरायाण।
वरखओवसमादो य, उदिदे अंगोवंगणामे॥37॥

घाणुक्किट्ठ -खेत्तादु, बहिरे संखेज्जजोयणपदेसे।
ठिदगंधाणि जिंघदे, दूरघाणत्त-मभिवंदेमि॥38॥(जुम्मं)

घ्राणेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय के उत्कृष्ट क्षयोपशम से एवं अंगोपांग नामकर्म का उदय होने पर घ्राणेन्द्रिय के उत्कृष्ट क्षेत्र से बाहर संख्यात योजन प्रदेश में स्थित गंध को जो सूंघ लेती है उस दूरघ्राणत्व ऋद्धि का मैं वंदन करता हूँ।

दूरदर्शित्व ऋद्धि

णयणिंदिय - सुदणाणावरण - वीरियंतरायाण।
वरखओवसमादो य, उदिदे अंगोवंगणामे॥39॥

णयणुक्किट्ठ-खेत्तादु, बहिरे संखेज्जजोयणपदेसे।
ठिददव्वाइं पस्सदि, दूरदंसित्तं णमंसामि॥40॥ (जुम्मं)

चक्षुइंद्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण व वीर्यान्तराय के उत्कृष्ट क्षयोपशम से एवं अंगोपांग नामकर्म का उदय होने पर चक्षु इंद्रिय के उत्कृष्ट क्षेत्र से बाहर संख्यात योजन प्रदेश में स्थित द्रव्यों को देखने वाली दूरदर्शित्व ऋद्धि को मैं नमस्कार करता हूँ।

दूरश्रवणत्व ऋद्धि

सोदिंदिय - सुदणाणावरण - वीरियंत रायाण।
वरखओवसमादो य, उदिदे अंगोवंगणामे॥41॥

सोदुक्किट्ठ-खेत्तादु, सुणदि बहि-संखेज्जजोयण-ठिदाण।
अक्खरणक्खरा य, णरतिरियाणं दूरसवणत्तं॥42॥ (जुम्मं)

श्रोत्रेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण व वीर्यान्तराय के उत्कृष्ट क्षयोपशम से एवं अंगोपांग नामकर्म का उदय होने पर कर्णेन्द्रिय के उत्कृष्ट क्षेत्र से बाहर संख्यात योजन प्रदेश में स्थित मनुष्य व तिर्यंचों के अक्षर व अनक्षरों को सुनने वाली दूरश्रवणत्व ऋद्धि है।

प्रज्ञाश्रमण बुद्धि ऋद्धि

वर-खओवसमादु सुद-णाणावरण-वीरियंतरायाण।
सुदज्झयणेणं विणा, संपुण्णसुदं विआणंते॥43॥

चउदसपुव्वं पढिदुं, चिंतिदुं जाणिदुं अइणिउणा जे।
ते हु पण्णा-समण-इड्ढि-धारगा वंदेमि इड्ढिं च।।44।। (जुम्मं)

श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के उत्कृष्ट क्षयोपशम से जो श्रुत के अध्ययन के बिना ही संपूर्ण श्रुत को जानते हैं, चौदहपूर्वों को पढ़ने, चिंतन करने व जानने में जो अति निपुण हैं ऐसे उन प्रज्ञाश्रमण ऋद्धि धारक व प्रज्ञाश्रमण ऋद्धि की मैं वंदना करता हूँ।

प्रज्ञाश्रमण बुद्धि ऋद्धि भेद

अउपत्तिअ-परिणामिय-वइणइकी-कम्मजाण भेयादो।
चदुविहा पण्णासमण-बुद्धि-इड्ढी संविदिदव्वा।।45।।

औत्पत्तिकी, पारिणामिकी, वैनयिकी और कर्मजा के भेद से प्रज्ञा- श्रमण बुद्धि ऋद्धि चार प्रकार की जाननी चाहिए।

औत्पत्तिकी बुद्धि

वरखओवसमादु सुद-णाणावरण-वीरियंतरायाण।
सुदविणयेणं च पुव्व-भवे उप्पण्ण-अउपत्तिआ।।46।।

श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के उत्कृष्ट क्षयोपशम से पूर्व भव में की गई श्रुत की विनय से उत्पन्न होने वाली औत्पत्तिकी बुद्धि है।

पारिणामिकी बुद्धि

वरखओवसमादु सुद - णाणावरण - वीरियंतरायाण।
णियणियजादिविसेस-समुब्भव-पारिणामिगी य।।47।।

श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के उत्कृष्ट क्षयोपशम से निज-निज जाति विशेषों में उत्पन्न होने वाली पारिणामिकी बुद्धि है।

वैनयिकी बुद्धि

बारसंग - विणयेण, पत्त - विसिट्ठणाण - खओवसमादु।
वइणइगी सिस्साणं, गुरुस्स सेट्ठ-विणय-सेवाहिं।।48।।

द्वादशांग की विनय एवं गुरु की श्रेष्ठ विनय व सेवा करने से प्राप्त विशिष्ट ज्ञान के क्षयोपशम से शिष्यों की उत्पन्न होने वाली वैनयिकी बुद्धि है।

कर्मजा बुद्धि

उवएसेण विणा गुरु-सेवाए विसिट्ठतवेणं वा।
आविब्भूद-कम्मजा, पण्णासमणइड्ढी णेया।।49।।

उपदेश के बिना ही विशिष्ट तप या गुरु सेवा से उत्पन्न होने वाली कर्मजा प्रज्ञाश्रमण ऋद्धि जाननी चाहिए।

गुरुसेवा - विणयेहिं सुहझाणसज्झायतवाइ - बलेण।
पत्त-पण्णासमण-इड्ढिं ताए धारगा णमामि।।50।।

गुरुसेवा व विनय से, शुभ ध्यान, स्वाध्याय व तपादि के बल से प्राप्त प्रज्ञाश्रमण ऋद्धि व उसके धारक श्रमणों को मैं नमस्कार करता हूँ।

वादित्व ऋद्धि

जाइ इड्ढिबलेणं वर-पक्खं करिय णिरुत्तरं वि ठावित्तु।
सगमदं पर-दव्वाणि घत्तादि वादित्तं वंदेमि।।51।।

जिस ऋद्धि के बल से उत्कृष्ट पक्ष को भी निरुत्तर करके अपने मत को स्थापित कर परद्रव्यों का अन्वेषण करता है उस वादित्व ऋद्धि का मैं वंदन करता हूँ।

चौदहपूर्वित्व ऋद्धि

जाए इड्ढिबलेणं, चउदसपुव्वं जाणिदुं समत्था।
तं चउदसपुव्वित्तं, ते सुदकेवली णमंसामि॥52॥

जिस ऋद्धि के बल से जो श्रमण चौदह पूर्व को जानने में समर्थ होते हैं उस चौदहपूर्वित्व ऋद्धि व उन श्रुतकेवलियों को मैं नमस्कार करता हूँ।

भिन्नदसपूर्वी ऋद्धि

दसपुव्वे समत्ते य, विज्जासुं उवट्ठिदासु जे दाएज्जा।
अण्णं ताण लोहेण, भिण्णदसपुव्वी ते णेया॥53॥

दस पूर्व के समाप्त होने पर, विद्याओं के उपस्थित होने पर जो लोभ के वशीभूत होकर उन विद्याओं को आज्ञा दे देते हैं उन्हें भिन्नदसपूर्वी जानना चाहिए।

अभिन्नदसपूर्वी ऋद्धि

दसपुव्वि-णादू जो, ण देदि अण्णं विज्जाणं समणो।
तं अभिण्ण-दस-पुव्विं, इड्ढिं णमामि विसुद्धीए॥54॥

दस पूर्व के ज्ञाता जो श्रमण विद्याओं के उपस्थित होने पर उन्हें आज्ञा नहीं देते उस अभिन्न दसपूर्वी ऋद्धि व उसके धारकों को मैं विशुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

स्वयंबुद्ध ऋद्धि

परोवएसेण विणा, तित्थयराइ-महाणरा धरंते।
सयलं सुदं ते सयंबुद्धा परियंदामि णिच्चं॥55॥

परोपदेश के बिना ही तीर्थंकरादि महापुरुष सकल श्रुत को धारण करते हैं उन सभी स्वयंबुद्ध श्रमणों को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

प्रत्येकबुद्धि ऋद्धि

जाए गुरुवएसेण, विणा सुदणाणं तवं पवड्ढेदि।
कम्मुवसमेण इड्ढिं, तं पत्तेयं रिसी वंदे॥56॥

जिस ऋद्धि के बल से गुरु उपदेश के बिना ही कर्म के उपशम से श्रुतज्ञान व तप संवर्द्धित होता है उस प्रत्येक ऋद्धि व उसके धारक ऋषियों की मैं वंदना करता हूँ।

जिणुवएसेणं विणा, लहंति बहुसुदं जाए ताए दु।
णमो बोहिय-बुद्धाण, सव्वदा भावविसुद्धीए॥57॥

जिस ऋद्धि से जिनोपदेश के बिना ही श्रमण बहुत श्रुत को प्राप्त कर लेते हैं, उस ऋद्धि को एवं बोधित-बुद्ध ऋषिराजों को भावों की विशुद्धिपूर्वक सदैव नमस्कार हो।

अष्टांग महानिमित्त ऋद्धि

जे के वि महातवस्सी, अट्ठंग-महाणिमित्त-विण्णाणी।
आसण्णभव्वुल्लेहि, ते वंदणीया सया इड्ढी वि॥58॥

जो कोई भी महातपस्वी अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता हैं, वे सभी श्रमण एवं अष्टांग महानिमित्त ऋद्धि भी आसन्नभव्य जीवों के द्वारा सदा वंदनीय है।

निमित्त के आठ अंग

अंग-सर-विंजण-छिण्ण-भउम-लक्खणंतरिक्खसिविणेहिं।
अट्ठमहाणिमित्तगंगेहि, सुहासुहं च जाणंति जदी॥59॥

अंग, स्वर, व्यंजन, छिन्न, भौम, लक्षण, अंतरिक्ष व स्वप्न इन आठ महानिमित्तक अंगों से यतिराज शुभ व अशुभ को जानते हैं।

अंग निमित्तज्ञान

णरतिरियाणं सहाव-वाद-पित्त-कफ-रुहिर-मंसादिं च।
वण्णादिं पस्सिय सुह-असुह-जाणण-मंगणिमित्तं॥60॥

मनुष्य व तिर्यंचों के स्वभाव, वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस व वर्णादि को देखकर शुभ व अशुभ जानना अंग निमित्तज्ञान है।

स्वर निमित्तज्ञान

णरतिरियाण सुणिच्चा, सरा लाहालाह-सुहदुक्खाणं।
जम्ममरणादीणं च, जाणणं सर-महाणिमित्तं॥61॥

मनुष्य व तिर्यंचों के स्वर सुनकर लाभ-अलाभ, सुख-दु:ख और जन्म-मरणादि को जानना स्वर महानिमित्तज्ञान है।

व्यंजन निमित्तज्ञान

णरतिरियाण पस्सिय, तिलादिं च सामुद्दिग-लक्खणं दु।
सुहदुक्खाइ-जाणणं, विंजण-महाणिमित्तं जाण॥62॥

मनुष्य व तिर्यंचों के तिल आदि व सामुद्रिक लक्षणों को देखकर सुख-दु:खादि जानना व्यंजन महानिमित्तज्ञान जानना चाहिए।

छिन्न निमित्तज्ञान

पस्सित्तु छिंदिद-सत्थ-वत्थादिं णरादीहि णयरादिं।
सुहासुहाण जाणणं, छिण्णमहाणिमित्तं णेयं॥63॥

मनुष्यादि के द्वारा छेदे गए शस्त्र, वस्त्रादि व नगरादि को देखकर शुभ व अशुभ का जानना छिन्न महानिमित्तज्ञान जानना चाहिए।

भौम निमित्तज्ञान

भूमीए वण्ण-गंध-रस-फासाइ-लक्खणाणि जाणित्तु।
पविड्ढि-हाणि-सुहासुह-कहणं भउममहाणिमित्तं॥64॥

भूमि के रंग, गंध, रस, स्पर्शादि लक्षणों को जानकर हानि-वृद्धि, शुभ वा अशुभ कहना भौम महानिमित्त है।

लक्षण निमित्तज्ञान

उर-ललाड-कर-पदतल-आदीसुं सत्थिग-चंदक्काइं।
पस्सिय तस्स सुहासुह-जाणणं लक्खण-णिमित्तं दु॥65॥

हृदय, ललाट, हथेली या तलवे आदि पर स्वास्तिक, चंद्र व सूर्यादि के चिह्नों को देखकर उस व्यक्ति का शुभ व अशुभ जानना लक्षण निमित्त है।

अंतरिक्ष निमित्तज्ञान

पस्सिय उदयत्थादिं, सूर-चंद-गह-णक्खत्तादीणं।
सुहासुहफलजाणणं, अंतरिक्खमहाणिमित्तं च॥66॥

सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्रादि के उदय व अस्तादि को देखकर शुभ व अशुभ फल जानना अंतरिक्ष महानिमित्त है।

स्वप्न निमित्तज्ञान

सिविण-णाणं वि पमाणं, तं णादुं सुहासुहं वदिदुं।
जो समत्थो सो सिविण-महाणिमित्त-जाणगो जाण॥67॥

स्वप्नज्ञान भी प्रमाण है। उसको जानने व शुभाशुभ कहने में जो समर्थ है वह स्वप्न-महानिमित्त का ज्ञाता जानना चाहिए।

स्वप्न भेद व स्वरूप

सिविणं दुविहं णेयं, भेयादो सया छिण्ण-मालाणं।
दंसणं मेत्तं चिण्ह-सिविणं गय-सीह-गवादीण॥68॥

छिन्न व माला के भेद से स्वप्न दो प्रकार का जानना चाहिए। हाथी, सिंह, गाय आदि का देखना मात्र चिह्न वा छिन्न स्वप्न जानना चाहिए।

पुव्वावर-संबंधिद-भावाणं तह अविरल-दंसणं दु।
माला-सिविणं णेयं, जिणिंदपणीदागमेणं च॥69॥

पूर्वापर से संबंधित भावों को अविरल देखना जिनेंद्र प्रणीत आगम से माला स्वप्न जानना चाहिए।

कम्मुवसमेणं परम-विसुद्धीए तवबलेण णिउणा।
होंति आसण्णभव्वा, अट्ठंगमहाणिमित्तेसुं॥70॥

कर्म के उपशम, परमविशुद्धि व तप के बल से आसन्न भव्य जीव अष्टांग महानिमित्त में निपुण होते हैं।

विक्रिया ऋद्धि व भेद

विसिट्ठ-किरियाजुत्ता, विकिरिया इड्ढी होज्ज महरिसीण।
सा वि बेविहा णेया, किरिया-विकिरिया-भेयादो॥71॥

महाऋषियों के विशिष्ट क्रिया से युक्त विक्रिया ऋद्धि होती है। क्रिया व विक्रिया के भेद से वह दो प्रकार की जाननी चाहिए।

श्रमण ऋद्धियों का ही कथन

जहवि विउव्व-इड्ढी हु, होज्ज णियमा किण्णु सव्वदेवाण।
अत्थ दु महारिसीणं, पगरणं इड्ढीण समणाण॥72॥

यद्यपि विक्रिया ऋद्धि सभी देवों के नियम से होती है किन्तु यहाँ श्रमणों की ऋद्धियाँ व उन महाऋषियों का ही प्रकरण है।

पृथक् अपृथक् विक्रियाऋद्धि

विउव्वइड्ढी दुविहा, पुधत्त-अपुधत्त-भेयादो तहा।
बहुतणं सिरिदुं खमो, मूलदेहादो पुघत्ताइ॥73॥

पृथक् विक्रिया व अपृथक् विक्रिया के भेद से विक्रिया ऋद्धि दो प्रकार की जाननी चाहिए। पृथक विक्रिया से जीव मूल शरीर से पृथक् बहुत शरीरों के निर्माण में समर्थ होता है।

अपुधत्त-इड्ढीए हु, बहुरूवं णिम्माणिदुं समत्थो।
स-देहे संसणीया, सा इड्ढी सय वंदणीया॥74॥

अपृथक् ऋद्धि से जीव अपने शरीर मे ही बहुत रूपों का निर्माण करने में समर्थ होता है ऐसी वह ऋद्धि सदैव प्रशंसनीय और वंदनीय है।

विक्रिया ऋद्धि भेद

अणिमा-महिमा-लहिमा-गरिमा-पत्ति-पाकम्मीसत्ताणं।
वसित्त - कामरूवित्त - अप्पडिघादिड्ढीण तहा॥75॥

अंतद्धाणादीणं, भेयादु बहुविहा विउव्वइड्ढी।
ता सव्वा इड्ढी तह, णमंसामि धारगा ताणं॥76॥ (जुम्मं)

अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व, कामरूपित्व, अप्रतिघात व अंतर्ध्यान आदि के भेद से विक्रिया ऋद्धि बहुत प्रकार की होती है। उन सभी ऋद्धियों व उन ऋद्धियों के धारक श्रमणों को मैं नमस्कार करता हूँ।

अणिमा ऋद्धि

जाइ इड्ढिपहावेण, सदेहं अणू व्व कुणिदुं समत्था।
तं सय अणिमाइड्ढिं, इड्ढिधारगा य णमंसामि॥77॥

जिस ऋद्धि के प्रभाव से अपने शरीर को अणु के बराबर करने में समर्थ होते हैं उस अणिमा ऋद्धि और ऋद्धिधारक मुनिराजों को मैं नमस्कार करता हूँ।

महिमा ऋद्धि

जाइ इड्ढिपहावेण, सदेहं मेरुव्व कुणिदुं समत्था।
तं सय महिमाइड्ढिं, धारगा वंदे विसुद्धीइ॥78॥

जिस ऋद्धि के प्रभाव से अपने शरीर को मेरु के बराबर करने में समर्थ होते हैं उस महिमा ऋद्धि व ऋद्धि के धारक मुनिराजों का विशुद्धिपूर्वक वंदन करता हूँ।

लघिमा ऋद्धि

जाइ इड्ढिपहावेण, सदेहं कुव्विदुं अक्कतूलं व।
सक्का लहिमाइड्ढिं, तं धारगा वि अभिवंदेमि॥79॥

जिस ऋद्धि के प्रभाव से अपने शरीर को अर्कतूल के समान करने में समर्थ होते हैं उस लघिमा ऋद्धि व ऋद्धि धारकों की मैं वंदना करता हूँ

गरिमा ऋद्धि

वज्जादो वि गुरुतरं, सगसरीरं कुणिदुं सक्का जाइ।
तं गरिमा-इड्ढिं वसु-गुणं लहिदुं धारगा थुवमि॥80॥

जिस ऋद्धि के प्रभाव से अपने शरीर को वज्र से भी अधिक भारी करने में समर्थ होता है उस गरिमा ऋद्धि व ऋद्धि के धारक मुनिराजों की अष्टगुणों को प्राप्त करने के लिए स्तुति करता हूँ।

प्राप्ति ऋद्धि

जाए अंगुलीए दु, महिट्ठिदा अक्कादिं फासेदुं।
समत्थ-समणा णमामि, पत्तिइड्ढिं तं धारगा य॥81॥

जिस ऋद्धि के प्रभाव से भूमि पर स्थित रहकर अंगुलि से सूर्यादि को स्पर्श करने में समर्थ होते हैं उस प्राप्ति ऋद्धि व ऋद्धि धारक श्रमणों को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्राकाम्य ऋद्धि

भूमीइ जलतरणं व्व, जले थलगमणं व्व गच्छदि जाए।
तं पाकम्म-धारगा, कम्मगिरिं खंडिदुं णमामि॥82॥

जिस ऋद्धि के प्रभाव से भूमि पर जल में तैरने के समान और जल में भूमि पर चलने के समान गति करते हैं उस प्राकाम्य ऋद्धि व ऋद्धिधारकों को कर्म पर्वत को खंडित करने के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

वा जाइ पहावेणं, बाह-मकादूण पुढविकाइगाण।
गच्छेदि तवबलेणं, पाकम्मइड्ढी णादव्वा॥83॥

अथवा जिस ऋद्धि के प्रभाव से (पर्वतादि के) पृथ्वीकायिक जीवों को बाधा न पहुँचाकर उनमें तपबल से गमन करते हैं वह प्राकाम्य ऋद्धि जाननी चाहिए।

वा जाए पहावेण, सरीरादो य भिण्णाभिण्णाणं।
सेण्णादीणं णिम्माण-सत्ती चिय पाकम्मइड्ढी॥84॥

अथवा जिस ऋद्धि के प्रभाव से शरीर से भिन्न वा अभिन्न रूप सेनादि के निर्माण की शक्ति होती है वह प्राकाम्य ऋद्धि जाननी चाहिए।

ईशत्व ऋद्धि

दुद्धरतवबलेणं दु, सव्वजीवेसु होज्ज पहुत्तं जाइ।
तं च ईसत्तइड्ढिं, धारगा थुवमि अघं खयिदुं॥85॥

जिस ऋद्धि के प्रभाव से दुर्द्धर तपबल से सब जीवों पर प्रभुत्व होता है उस ईशत्व ऋद्धि व ऋद्धि धारक श्रमणों की पापों के क्षय के लिए मैं स्तुति करता हूँ।

जगे विज्जंत - सव्वत्था भुंजिदुं सत्ती उप्पण्णा।
जाए पहावेण वा, ईसत्तइड्ढी विण्णेया॥86॥

अथवा जिस ऋद्धि के प्रभाव से संसार में विद्यमान सभी पदार्थों को भोगने की शक्ति उत्पन्न होती है वह ईशत्व ऋद्धि जाननी चाहिए।

वशित्व ऋद्धि

जाइ तिव्वतवबलेण, जीवसमूहो होज्जा सायत्तो।
तं वसित्तं पणमामि, धारगा वि भव-दुहं खयिदुं॥87॥

जिससे तीव्र तपोबल के द्वारा जीव-समूह अपने अधीन हो जाता है उस वशित्व ऋद्धि व ऋद्धि-धारक-मुनिराजों को संसार दुःख के क्षय के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

जाए पहावेण वा, णरतिरिया अण्णरूवं करिदुं।
समत्था सगिच्छाए, ता वसित्तइड्ढी दु णेया॥88॥

अथवा जिससे प्रभाव से मनुष्य व तिर्यंच अपनी इच्छा से अन्य रूप करने में (अर्थात् आकार बदलने में) समर्थ होते हैं वह वशित्व ऋद्धि जाननी चाहिए।

कामरूपित्व ऋद्धि

इच्छिदबहुरूवं रयिदुं, सक्कंति जुगवं जाइ पहावेण।
कामरूवित्त-इड्ढिं, समणा थुवमि कामं खयिदुं॥89॥

जिसके प्रभाव से श्रमण युगपत् इच्छित बहुत से रूपों को रचने में समर्थ होते हैं उस कामरूपित्व ऋद्धि व ऋद्धिधारक-श्रमणों की काम क्षय के लिए मैं स्तुति करता हूँ।

अप्रतिघात ऋद्धि

जाइ पहावेण सेल-सिलादीणब्भंतरं होच्चु खं व।
गच्छिदुं सक्कंति ते, थुवमि अप्पडिघाद-इड्ढिं च॥90॥

जिस ऋद्धि के प्रभाव से पर्वत, शिला आदि के मध्य में होकर आकाश के समान गमन करने में समर्थ होते हैं उस अप्रतिघात ऋद्धि व उन ऋद्धिधारकों की मैं स्तुति करता हूँ।

अंतर्धान ऋद्धि

जाइ इड्ढिपहावेण, समणा अदिट्ठं हवेदुं समत्था।
अंतद्धाणइड्ढिं दु, तं परियंदामि धारगा वि॥91॥

जिस ऋद्धि के प्रभाव से श्रमण अदृष्ट होने में समर्थ होते हैं उस अंतर्ध्यान ऋद्धि व ऋद्धिधारक ऋषिराजों को मैं नमस्कार करता हूँ।

क्रियाचारण ऋद्धि व भेद

विसिट्ठ-तवबलेणं दु, इड्ढिजणिदविसेसकिरिया रिसीण।
जा सा किरिया दुविहा, णहगामित्त-चारण-हड्ढी॥92॥

विशिष्ट तप के बल से ऋषिराजों की जो ऋद्धि जनित विशेष क्रिया है वह क्रियाऋद्धि जाननी चाहिए। वह क्रियाऋद्धि दो प्रकार की है—आकाशगामित्व व चारण ऋद्धि।

आकाशगामित्व ऋद्धि

जाए काउसग्गेण, पच्छंददि पउमासणादीहि खे।
तं आगासगामित्त-इड्ढिं धारगा य अच्चेमि॥93॥

जिस ऋद्धि के द्वारा कायोत्सर्ग वा पद्मासनादि से मुनिराज आकाश में गमन करते हैं उस आकाशगामित्व ऋद्धि तथा ऋद्धिधारक मुनिराजों की मैं अर्चना करता हूँ।

चारण ऋद्धि

अहणिवत्तीए जस्स, कुसलपवट्टी संजम-चरियेसु य।
वड्ढमाणचारित्तं लहिदुं ते चारणे णमामि॥94॥

पापों की निवृत्ति के लिए जिसकी संयम व चारित्र में कुशल प्रवृत्ति है उन चारण मुनिराजों को वर्द्धमान चारित्र की प्राप्ति के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

चारणऋद्धि भेद

धाराणलमेघपवण - तंतु - फल - पुप्फ - बीअ - पत्ताणं च।
जल - जंघा - णह - सेढी - जोदिस - धूमाइ-भेयेणं॥95॥

बहुविह-चारणइड्ढी, विसुद्धीइ पणमामि चारणा ता।
इग-बे-आइ-जोगेण, बहुविह-चारण-धारगा अवि॥96॥
(जुम्मं)

धारा, अग्नि, मेघ, वायु, तंतु, फल, पुष्प, बीज, पत्र, जल, जंघा, नभ, श्रेणी, ज्योतिष, धूमादि के भेद से चारण ऋद्धि बहुत प्रकार की होती है। चारण ऋद्धि एक, दो आदि के संयोग से भी बहुत प्रकार की होती है। विशुद्धिपूर्वक उन सभी चारण ऋद्धियों को एवं बहुत प्रकार की चारण-ऋद्धि के धारक यतिराजों को मैं नमस्कार करता हूँ।

धाराचारण ऋद्धि

जीवविराहणं विणा, गच्छंति दु मेहमुक्कधाराणुवरि।
जाइ धाराचारणं, थुवमि भवधारं छिंदिदुं च॥97॥

जिससे मुनिराज जीव विराधना के बिना मेघों से छोड़ी गई जलधाराओं के ऊपर गमन करते हैं उस धाराचारणऋद्धि व ऋद्धिधारकों को संसार की धार (संतति) को छेदने के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

अग्निचारण ऋद्धि

जीवविराहणं विणा, अग्गिसिहाण उवरि गच्छंते ते।
जाइ अग्गिचारणं च, तं भवं दहिदुं णमंसामि॥98॥

जिससे यतिराज जीव-विराधना के बिना अग्नि की शिखाओं के ऊपर गमन करते हैं उस अग्निचारण ऋद्धि और ऋद्धि-धारकों को संसार को नष्ट करने के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

मेघचारण ऋद्धि

जीवविराहणं विणा, बहुविहमेहाणुवरि गच्छंति ते।
जाए मेहचारणं, तं थुवमि दुह-मेहं खयिदुं॥99॥

जिससे श्रमणराज जीव-विराधना के बिना बहुत प्रकार के मेघों के ऊपर गमन करते हैं उस मेघचारण ऋद्धि व उन ऋद्धिधारकों की दु:ख रूपी मेघों के क्षय के लिए मैं स्तुति करता हूँ।

मारुत्चारण ऋद्धि

जाए बहुविहगदिजुद - वाउ - पदेसपंति-उवरि गच्छंति।
जीव-विराहणं विणा, थुवमि तं मारुदचारणं च॥100॥

जिससे ऋषिराज जीवों की विराधना के बिना बहुत प्रकार की गति से युक्त वायु के प्रदेशों की पंक्ति पर गमन करते हैं उस मारुत चारण ऋद्धि व ऋद्धिधारकों की मैं स्तुति करता हूँ।

तंतुचारण ऋद्धि

जीवा अविराहित्ता लूआ-तंतु-उवरि गच्छंति जाइ।
तं तंतु-चारणं ते, समणा संथुवमि भत्तीए॥101॥

जिससे मुनि जीवों की विराधना न करके मकड़ी के तंतु पर गमन करते हैं उस तंतुचारण ऋद्धि व उन ऋद्धिधारक श्रमणों की मैं भक्तिपूर्वक संस्तुति करता हूँ।

फलचारण ऋद्धि

जीवे अविराहित्ता, फलुवरि गच्छंति जाए वंदेमि।
फलचारणं धारगा, पाविदुं सासय-मोक्खफलं॥102॥

जिससे श्रमण जीवों की विराधना न करके फल के ऊपर गमन करते हैं उस फलचारण ऋद्धि व उन ऋद्धिधारकों की शाश्वत मोक्षफल की प्राप्ति के लिए मैं वंदना करता हूँ।

पुष्पचारण ऋद्धि

जीवे अविराहित्ता, पुप्फुवरि गच्छंति जाइ किट्टेमि।
तं पुप्फचारणं सय, धारग-तवसी वि तिजोगेहि॥103॥

जिससे जीवों की विराधना न करके तपस्वी पुष्प के ऊपर गमन करते हैं उस पुष्पचारण ऋद्धि उन ऋद्धिधारक-तपस्वियों की मैं तीनों योगों से स्तुति करता हूँ।

बीजचारण ऋद्धि

जीवे अविराहित्ता, बीआण उवरि गच्छंते जाए।
तं बीअचारणं हं, अच्चेमि धारणा सुभत्तीइ॥104॥

जिससे जीवों की विराधना न करके मुनि बीजों के ऊपर गमन करते हैं उस बीजचारण ऋद्धि व ऋद्धिधारकों की मैं भक्तिपूर्वक अर्चना करता हूँ।

पत्रचारण ऋद्धि

जीवे अविराहित्ता, पत्तोवरि णिम्महंति जाए तं।
पत्तचारणं वंदे, धारगा वि हिअय-सुद्धीए॥105॥

जिससे मुनिराज जीवों की विराधना न करके पत्तों के ऊपर गमन करते हैं उस पत्रचारण ऋद्धिधारकों की भी मैं हृदय की शुद्धिपूर्वक वंदना करता हूँ।

जलचारण ऋद्धि

जलफासेणं विणा दु, जीवे अविराहिय वच्चंति जाइ।
जलुवरि महीव तं जल-चारणं धारगा किट्टेमि॥106॥

जिसके प्रभाव से श्रमण जल को स्पर्श किए बिना जीवों की विराधना न करके जल के ऊपर भूमि के समान गमन करते हैं उस जलचारण ऋद्धि व ऋद्धिधारक श्रमणों की मैं स्तुति करता हूँ।

जंघाचारण ऋद्धि

भूमीए चदुरंगुल-उवरि वच्चंति विणा वक्कजाणुं।
तं जंघाचारणं च, रिसी संथुणमि मण-सुद्धीइ॥107॥

जिससे भूमि से चार अंगुल ऊपर आकाश में घुटनों को मोड़े बिना गमन करते हैं उस जंघाचारण ऋद्धि व ऋद्धिधारक ऋषियों की मैं मन की शुद्धिपूर्वक स्तुति करता हूँ।

नभचारण ऋद्धि

णहे वच्चंति जाए, चउ-अंगुलहियपमाणेण भूए।
णहचारणं धारगा, परियंदामि हिअय-सुद्धीइ॥108॥

जिससे मुनिगण भूमि से चार अंगुल से अधिक प्रमाण से ऊपर आकाश में गमन करते हैं उस नभचारण ऋद्धि व ऋद्धिधारकों को मैं हृदय की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

श्रेणीचारण ऋद्धि

धूमग्गि - पव्वय - रुक्ख - तंतु - जूहेसु उड्ढारोहणस्स।
सत्तिं लहंति जाइ य, पूयेमि सेणि-चारणं तं॥109॥

जिससे ऋषि धूम, अग्नि, पर्वत, वृक्ष, तंतु-समूह पर से ऊपर चढ़ने की शक्ति प्राप्त करते हैं उस श्रेणीचारण ऋद्धि व ऋद्धिधारकों की मैं पूजन करता हूँ।

ज्योतिष चारण ऋद्धि

जोदिसविमाणकिरणे, अवलंबिदूण अइच्छंति जाए।
तं जोदिस-चारणं पि, अच्चेमि इड्ढि-धारगा हं।।110।।

जिससे तपस्वी ज्योतिष विमानों की किरणों का अवलंबन करके गमन करते हैं उसे ज्योतिषचारण ऋद्धि व ऋद्धिधारकों की भी मैं वंदना करता हूँ।

धूमचारण ऋद्धि

जीवविराहणं विणा, पसरंत-धूमं अवलंबिदूणं।
वच्चदि जाइ तं धूम-चारणं धारगा किट्टेमि।।111।।

जिससे मुनि जीवों की विराधना किए बिना फैले हुए धुएँ का अवलंबन करके गमन करते हैं उस धूमचारण ऋद्धि व ऋद्धिधारकों की मैं स्तुति करता हूँ।

तप ऋद्धि व भेद

आदावणादि -दुद्धर-तवं कुणंत-णिग्गंथाण हवंति।
कम्मं छिंदेदुं उप्पण्ण - बहुइड्ढी तवबलेण।।112।।

कर्म छेद के लिए आतापन आदि दुर्द्धर तप करते हुए निर्ग्रन्थों के तप बल से उत्पन्न बहुत सी ऋद्धियाँ होती हैं।

उग्ग - घोर - घोरपरक्कम - घोरबंभचरिय - तत्त - दित्ता।
महा य एवंविह - तव-इड्ढीणं भेया णादव्वा।।113।।

उग्रतप, घोरतप, घोरपराक्रम, घोर ब्रह्मचर्य, तप्त, दीप्त एवं महातप, इस प्रकार तप ऋद्धियों के भेद जानने चाहिए।

उग्रतप ऋद्धि भेद

उग्गतवा बेविहा दु, उग्गुग्ग-अवट्ठिदाणं भेयेणं।
उग्गतवो कम्मगिरिं चूरेदुं विज्जुदपादोव्व॥114॥

उग्रोग्र तप व अवस्थित तप के भेद से उग्र तप दो प्रकार का जानना चाहिए। कर्म पर्वत को चूर्ण करने के लिए उग्र तप विद्युत्पात के समान है।

उग्रोग्र तप ऋद्धि

एगुववासं कुव्विय, पारित्तु दो-उववासं पुण तिण्णि।
जावज्जीवं करदे, इत्थमेगुत्तरविड्ढीए॥115॥

तिगुत्तीहिं रक्खिदा, उग्गुग्गतवइड्ढि-धारग-समणा।
णमामि भत्तीएतव-इड्ढिं पि सम्मतवंलहिदुं॥116॥(जुम्मं)

जो एक उपवास करके पारणा करता है फिर दो उपवास कर पारणा करता है पुनः तीन उपवास करता है। इस प्रकार एक अधिक वृद्धि के साथ जीवन पर्यन्त उपवास करने वाले तीन गुप्तियों से रक्षित उग्रोग्र तप-ऋद्धि के धारक श्रमणों एवं उस उग्रोग्र तप ऋद्धि को मैं सम्यक् तप की प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ

अवस्थित तप ऋद्धि

एगं दिक्खुववासं, करिय एगंतरं जदि दुअणसणं।
कुणदि तो दोअंतर, कयाइ तिण्णि तिअंतरं पुण॥117॥

कयाइ मासोववासं कुणदि तो मासंतरं जोगी।
जावज्जीवं विहरदि, कमेण हेट्ठा पदंतो णो॥118॥

तं अवट्ठिद-उग्ग-तव-धारगा इड्ढिं परियंदामि।
उग्गाणलोव्व कम्मिंधणं दहेदुं दु उग्गतवो॥119॥ (तिगं)

एक दीक्षा का उपवास करके एकांतर अर्थात् एक आहार-एक उपवास करते हैं। यदि दो उपवास कर ले तो दो अंतर (एक आहार, दो उपवास) करते हैं। यदि कदाचित् तीन उपवास कर ले तो तीन अंतर (एक आहार, तीन उपवास) करते हैं। पुनः यदि मासोपवास कर ले तो मासांतर (एक आहार, एक महिने उपवास) करते हैं इस प्रकार क्रम से नीचे न गिरते हुए जो जीवन पर्यन्त विहार करते हैं उस अवस्थित उग्रतप ऋद्धि एवं ऋद्धिधारकों को नमस्कार करता हूँ। उग्र अग्नि के समान उग्रतप कर्म रूपी ईंधन को जलाने में समर्थ होता है।

घोरतप ऋद्धि

जाइ जराइ-रोयेहि, अच्चंत-पीडाए अवि कुव्वेदि।
दुद्धरतवं तं घोर-तवइड्ढिं धारगा वंदे॥120॥

जिससे जरा आदि रोगों के द्वारा अत्यंत पीड़ा होने पर भी दुर्द्धर तप करते हैं उस घोरतप ऋद्धि व ऋद्धि-धारकों की मैं वंदना करता हूँ।

घोरपराक्रम तप ऋद्धि

जाए वड्ढंततवा, कंटगग्गि - णगुक्काधूमादिं।
वरिसाविदुं समत्था, पुण्णसायरं च सोसेदुं॥121॥

तं घोरपरक्कम - तव - इड्ढिं धारगा तह अहिणंदेमि।
ण सक्कदि तवं कुणिदुं, वीरिय-खओवसमेण विणा॥122॥
(जुम्मं)

जिससे अपने तप को बढ़ाते हुए मुनिराज कंटक, अग्नि, पर्वत, उल्का, धूँआ आदि को बरसाने और पूर्ण सागर को सोखने में समर्थ होते हैं उस घोरपराक्रम तप ऋद्धि एवं ऋद्धिधारकों को मैं नमस्कार करता हूँ। वीर्यान्तराय के क्षयोपशम के बिना कोई भी तप करने में समर्थ नहीं होता।

अघोरब्रह्मचर्य ऋद्धि

जाए मुणिवर - खेत्ते, चोराइ - बाहा महाजुद्धादी।
णेव होंति तं अघोर-बंभयारि-इड्ढिं च णमामि॥123॥

जिससे मुनिराज के क्षेत्र में चौरादि की बाधा और महायुद्ध आदि नहीं होते वह अघोर ब्रह्मचारित्व ऋद्धि है। उस अघोरब्रह्मचर्य ऋद्धि और ऋद्धि-धारकों को मैं नमस्कार करता हूँ।

चारित्तमोहस्स वर-खओवसमे दुस्सिविणं खयदि जा।
घोरचरियं चरेदि दु, अघोर-गुण-बंभयारी सा॥124॥

चारित्रमोहनीय के उत्कृष्ट क्षयोपशम होने पर जो ऋद्धि दु:स्वप्न को नष्ट करती है अथवा जिससे मुनि घोर ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं वह अघोरगुणब्रह्मचारित्व ऋद्धि है।

तप्ततप ऋद्धि

भुत्तण्णं खयदि तत्तलोहकढाहे पडिद-जलबिंदू व।
मलमुत्ताइरूवं ण, परिणमदि जाइ तत्तं थुवमि॥125॥

तपी हुई लोहे की कड़ाही में गिरे हुए जलकण के समान जिससे खाया हुआ अन्न क्षीण हो जाता है, मल-मूत्रादि रूप परिणमित नहीं होता, उस तप्ततप ऋद्धि व ऋद्धि-धारकों की मैं स्तुति करता हूँ

दीप्ततप ऋद्धि

जाए तिजोग-बलिट्ठ-रिसीण बहुउववासेहि वड्ढेदि।
सूरसमदेहकंती, तं दित्ततवं च णमंसामि॥126॥

जिससे तीन योग अर्थात् मन, वचन व काय से बलिष्ठ ऋषियों के बहुत प्रकार के उपवासों द्वारा सूर्य के समान शरीर की कांति वृद्धिगत होती है उस दीप्ततप ऋद्धि और ऋद्धिधारकों को मैं नमस्कार करता हूँ।

महातप ऋद्धि

चदुसण्णाणबलेण, मंदिरपंति-आइ-महोववासं।
कुणदि जाए तं महा-तवइड्ढिं धारगा वंदे॥127॥

जिससे चार सम्यग्ज्ञान अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान के बल से मंदिरपंक्ति आदि महोपवास करते हैं उस महातपऋद्धि व ऋद्धिधारकों की मैं वंदना करता हूँ।

बल ऋद्धि भेद

जोगीण विसुद्धीए, रयणत्तयसाहणाइ वर-तवेण।
लोगुत्तर-पहावी दु, बल-इड्ढी तिविहा जाणेज्ज॥128॥

विशुद्धिपूर्वक रत्नत्रय की साधना से उत्कृष्ट तप से योगियों के लोकोत्तर प्रभावी बल ऋद्धि होती है। वह बलऋद्धि तीन प्रकार की जाननी चाहिए।

मनोबल ऋद्धि

वरे खओवसमे सुदणाणावरण-वीरियंतरायाण।
अंतोमुहुत्ते सुदं, पुण्णं चिंतदि रिसी जाइ॥129॥

तं मणबल-इड्ढिं तह, ताइ इड्ढिधारगा जदी वंदे।
खालेदुं चित्तमलं, हिमकणं व णिम्मलचित्तस्स॥130॥(जुम्मं)

जिससे श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय के उत्कृष्ट क्षयोपशम होने पर ऋषिवर अंतर्मुहूर्त में संपूर्ण श्रुत का चिंतन करते हैं वह मनोबल ऋद्धि है। उस मनोबल ऋद्धि व ऋद्धिधारक-यतियों की चित्त मल के प्रक्षालन एवं ओसबूंद के समान निर्मल चित्त के लिए वंदना करता हूँ।

वचनबल ऋद्धि

जिब्भक्ख-णोअक्ख-सुदणाणावरण-वीरियविग्घाण।
वर-खओवसमे सुदं, पुण्णं णादु-मुच्चारिदुं च॥131॥

जाइ अहिणकंठा सम - रहिदा अंतोमुहुत्ते समत्था।
तं वयणबलं इड्ढिं, ताइ धारगा परियंदामि॥132॥(जुम्मं)

जिह्वेन्द्रियावरण, नोइंद्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय के उत्कृष्ट क्षयोपशम होने पर जिससे मुनिराज श्रमरहित व अहीनकंठ होता हुआ अंतर्मुहूर्त में संपूर्ण श्रुत को जानने व उसका उच्चारण करने में समर्थ होते हैं उस वचनबल ऋद्धि व उस ऋद्धि के धारक तपस्वियों को मैं नमस्कार करता हूँ।

कायबल ऋद्धि

वीरियविग्घस्स दु वर-खओवसमेण समहीण-समणा।
काउसग्गं कुणंता, मास-चउमास-पज्जंतं दु॥133॥

तिलोय - मुच्चावित्ता, कणिट्ठंगुलीइ ठविदु-मण्णत्थं।
होज्ज सक्का जाइ तं, कायबलं थुवमि धारगा वि॥134॥(जुम्मं)

जिससे वीर्यान्तराय कर्म के उत्कृष्ट क्षयोपशम से श्रमणजन महिने, चार महिने पर्यंत कायोत्सर्ग करते हुए श्रम से रहित होते हैं तथा तीन लोक को कनिष्ठा अंगुली पर उठाकर अन्यत्र स्थापित करने में समर्थ होते हैं उस कायबल ऋद्धि व ऋद्धिधारकों की भी में स्तुति करता हूँ।

औषधिऋद्धि व भेद

असज्झ-रोय-सोग-भय-दुहहारगा तह ओसही इड्ढी।
गंभीरा णिग्गंथा, लहंति दुद्धर-सम्म-तवेण॥135॥

असाध्य रोग, शोक, भय तथा दु:खहारक औषधि ऋद्धि जाननी चाहिए। गंभीर निर्ग्रन्थराज दुर्द्धर सम्यक् तप से उसे प्राप्त करते हैं।

अम्मरिस-जल्ल-मल-विड-खेल-सव्वोसहीणं भेयादो।
वयणदिट्ठि-णिव्विसाण, अट्ठविहा ओसही इड्ढी॥136॥

आमर्षौषधि, जल्लौषधि, मलौषधि, विटौषधि, क्ष्वेलौषधि, सर्वोषधि, वचननिर्विष और दृष्टिनिर्विष के भेद से औषधि ऋद्धि आठ प्रकार की जाननी चाहिए।

आमर्षौषधि ऋद्धि

जाए हत्थपादाइ-फासेण रिसीण णिरामया होज्ज।
तं अम्मरिसोसहिं च, धारगा अच्चेमि भत्तीइ॥137॥

जिससे ऋषिराज के हाथ-पैरादि के स्पर्श से ही निरोगी हो जाते हैं उस आमर्षौषधि ऋद्धि एवं ऋद्धिधारकों की मैं भक्तिपूर्वक अर्चना करता हूँ।

जल्लौषधि ऋद्धि

जाए महारिसीणं, सेदासिद-देहरजेणं रोया।
खयंते पूयेमि तं, जल्लोसहिं धारग-मुणी वि॥138॥

जिस ऋद्धि से महाऋषियों के पसीने के आश्रित देहरज से भी रोग नष्ट हो जाते हैं उस जल्लौषधि ऋद्धि एवं ऋद्धिधारक मुनिराजों की भी मैं पूजन करता हूँ।

मलौषधि ऋद्धि

जाए जीह-दंतोट्ठणासा-कण्णादीण मलं खयंति।
रोया तं मलोसहिं, इड्ढि-धारग-समणा वि थुवमि॥139॥

जिससे मुनिराज के जिह्वा, दाँत, ओठ, नासिका और कर्णादिक का मल भी जीवों के रोगों का क्षय करता है उस मलौषधि ऋद्धि व ऋद्धिधारक श्रमणों की मैं स्तुति करता हूँ।

विप्रौषधि ऋद्धि

जाए महारिसीणं, मल-मुत्त-सुक्कादी अवि खयंते।
रोया तं विट्ठोसहि-इड्ढिं धारगा य पणमामि॥140॥

जिससे महाऋषियों के मल-मूत्र, शुक्रादि भी रोगों का क्षय करते हैं उस विप्रौषधि ऋद्धि व ऋद्धिधारकों को भी नमस्कार करता हूँ।

क्ष्वेलौषधि ऋद्धि

जाए दु खेल-लाला-सिंहाणादी खयंते रिसीणं।
सव्वरोया दु सहसा, तं खेलोसहिं च संथुणमि॥141॥

जिससे महर्षियों के लार, कफ, नासिका मल आदि सभीरोगों का शीघ्र ही क्षय करते हैं उस क्ष्वेलौषधि ऋद्धि व ऋद्धिधारकों की मैं संस्तुति करता हूँ।

सर्वौषधि ऋद्धि

जाइ महारिसीण रस-रुहिर-मंस-मज्ज-मलादी खयंति।
रोया तं सव्वोसहि-मिड्ढिं धारगा संथुणेमि॥142॥

जिससे महर्षियों के रस, रुधिर, मांस, मज्जा व मलादि रोगों का क्षय करते हैं उस सर्वोषधि ऋद्धि एवं ऋद्धिधारकों की मैं स्तुति करता हूँ।

वचननिर्विष ऋद्धि

जाए विविहं अण्णं, विसजुत्तं वि णिव्विसं हवेदि तं।
वयणमेत्तेणं वयण - णिव्विस - धारगा पूयेमि॥143॥

जिससे वचनमात्र से विषयुक्त विविध अन्न भी निर्विष हो जाता है उस वचननिर्विष ऋद्धि और ऋद्धिधारकों की भी मैं पूजा करता हूँ।

जाइ इड्ढिपहावेण, रिसिवयणं आयण्णिय णिरोयी।
होदि जीवो सा वयण-णिव्विसा सया वंदणीया॥144॥

जिस ऋद्धि के प्रभाव से ऋषिराज के वचन सुनकर जीव निरोगी होता है वह वचननिर्विष ऋद्धि सदा वंदनीय है।

दृष्टिनिर्विष ऋद्धि

जाइ इड्ढिपहावेण, रिसिदिट्ठीए णिरामयत्तं च।
णिव्विसत्तं पावेदि, तं दिट्ठिणिव्विसं च वंदे॥145॥

जिस ऋद्धि के प्रभाव से ऋषि की दृष्टिमात्र से जीव निरोगता और निर्विषता को प्राप्त करता है उस दृष्टिनिर्विष ऋद्धि और ऋद्धिधारकों की मैं वंदना करता हूँ।

रसऋद्धि भेद

आसीविस-दिट्ठिविसा, खीर-महु-सप्पि-अमियस्सावीण।
भेयेण छव्विह-रसा, विसा अवि सुहासुहा दुविहा॥146॥

आशीर्विष, दृष्टिविष, क्षीरस्रावी, मधुस्रावी, सर्पिस्रावी और अमृतस्रावी के भेद से रस ऋद्धि छः प्रकार की जाननी चाहिए। आशीर्विष और दृष्टिविष ऋद्धि भी शुभ व अशुभ दो प्रकार की है।

शुभाशुभ आशीर्विष ऋद्धि

कहदि जीव तो जीवदि, जदि भणदे मर तो मरेदि जीवो।
जाण वयण-ममियं व, विसं व कमेण तह जाए॥147॥

सुह-मसुह-मासीविसं, संथुणमि ताइ धारगा समणा वि।
सुह-आसीविसरसस्स, आसीणिव्विसरसा वि णाम॥148॥
(जुम्मं)

जिस ऋद्धि से मुनिराज यदि कहते हैं 'जीओ' तो जीव जी जाता है और यदि कहते हैं 'मर जाओ' तो जीव मर जाता है वा जिनके वचन अमृत व विष रूप होते हैं क्रमशः उस शुभ आशीर्विष और अशुभ आशीर्विष ऋद्धि एवं ऋद्धिधारक श्रमणों को नमस्कार करता हूँ। शुभ आशीर्विष रस का नाम आशीर्निर्विष रस ऋद्धि भी है।

शुभाशुभ दृष्टिविष ऋद्धि

जाए रिसिणा पसण्णदिट्ठीइ दंसणे जीवदि मंगलं हवेदि।
रोसजुत्तदिट्ठीए, मरदि अमंगलं वा कमेण॥149॥

सुह-मसुह-दिट्ठिविसं सया धारग-महारिसी पूयेमि।
सुह-दिट्ठिविसरसा वा, दिट्ठि अमियरसा एगट्ठा॥150॥(जुम्मं)

जिससे ऋषि के द्वारा प्रसन्न दृष्टि से देखने पर जीव जीता है व उसका मंगल होता है एवं रोषयुक्त दृष्टि से देखने पर जीव मर जाता है या उसका अमंगल होता है वह क्रमशः शुभ दृष्टिविष व अशुभ दृष्टिविष ऋद्धि है। उस शुभ-अशुभ दृष्टिविष ऋद्धि व ऋद्धिधारक महाऋषियों की मैं सदा पूजा करता हूँ। शुभ दृष्टिविष रस व दृष्टिअमृतरस ऋद्धि एकार्थवाची हैं।

क्षीरस्रावी ऋद्धि

जाए जदीण करतले, होदि णिक्खित्त-रूक्खाहारादी।
खीरं व अहिणंदेमि, खीरस्सावि च धारगा वि॥151॥

जिससे यतियों के करतल पर रखा रूखा आहारादि भी दुग्ध के समान हो जाता है उस क्षीरस्रावी ऋद्धि और ऋद्धिधारकों को भी मैं नमस्कार करता हूँ।

मधुस्रावी ऋद्धि

जाए जदीण करतले, होदि णिक्खित्त-रुक्खाहारादी।
महुरसं व अहिणंदमि, महुरस्सावि च धारगा वि॥152॥

जिससे यतियों के करतल पर रखा रूखा आहारादि भी मधुर रस के समान हो जाता है उस मधुस्रावी ऋद्धि और ऋद्धिधारकों को भी मैं नमस्कार करता हूँ।

सर्पिस्रावी ऋद्धि

जाए जदीण करतले, होदि णिक्खित्त-रुक्खाहारादी।
सप्पीव परियंदामि, सप्पिस्सावि च धारगा वि॥153॥

जिससे यतियों के करतल पर रखा हुआ रुक्ष आहारादि भी घृत के समान हो जाता है उस सर्पिस्रावी ऋद्धि व ऋद्धिधारकों को भी मैं नमस्कार करता हूँ।

अमृतस्रावी ऋद्धि

जाए जदीण करतले, होदि णिक्खित्त-रुक्खाहारादी।
अमियं व परियंदामि, अमियस्सावि च धारगा वि॥154॥

जिससे यतियों के करतल पर रखा हुआ रुक्ष आहार आदि भी अमृत के समान हो जाता है उस अमृतस्रावी ऋद्धि व ऋद्धिधारकों को भी मैं नमस्कार करता हूँ।

क्षेत्रऋद्धि भेद

विसेसतवबलेणं च, पलालं व संपत्तखेत्तइड्ढी वि।
दुविहा अक्खीण-महाणसा महालया सुह-इड्ढी॥155॥

विशेष तप के बल से भूसे के समान प्राप्त क्षेत्र ऋद्धि दो प्रकार की जाननी चाहिए—अक्षीणमहानस और अक्षीणमहालय नामक शुभ ऋद्धि।

अक्षीणमहानस ऋद्धि

मुणिगहिदाहारादो, सेसे पियं तद्दिवसे चक्किस्स।
झिज्जदि ण भुजंतं, संपुण्ण-वाहिणीए तहा हु॥156॥

होज्ज अक्खीणरूवं, भोयणं वा णमामि धारगा तं।
अक्खीण-महाणसंदुं,अक्खीणप्पसीलंलहिदुं॥157॥(जुम्मं)

जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनि के ग्रहण किए गए आहार में से शेष रखी हुई किसी प्रिय वस्तु को चक्रवर्ती की संपूर्ण सेना के द्वारा खाते हुए भी वह क्षीण नहीं होता, भोजन अक्षीण रूप हो

जाता है उस अक्षीणमहानस ऋद्धि व ऋद्धिधारकों को मैं अक्षीण आत्मस्वभाव की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ।

अक्षीणमहालय ऋद्धि

जाइ चउधणुपमाणे समचउरसालयम्मि असंखेज्जा।
णरतिरिया चिट्ठंते, थुवमि अक्खीणमहालयं च॥158॥

जिससे समचतुष्कोण चार धनुष प्रमाण में असंख्यात मनुष्य व तिर्यंच समा जाते हैं उस अक्षीणमहालय ऋद्धि व ऋद्धिधारकों की मैं स्तुति करता हूँ

रत्नत्रय युक्त ऋद्धि की दुर्लभता

अणंतवारं लहिदा, लोगिगिड्ढी चिय भववड्ढगा दु।
णो करणाइ-लद्धीइ, रयणत्तय-जुद-इड्ढी किण्णु॥159॥

जीव के द्वारा अनंत बार संसारवर्द्धक लौकिक ऋद्धियाँ प्राप्त की गई किन्तु करण आदि लब्धि के द्वारा रत्नत्रय से युक्त ऋद्धि कभी प्राप्त नहीं की गई।

भवतारक-जिनत्व

विणा जिणत्त-मसक्का, भवसायरादु णित्थारिदुं इड्ढी।
जिणत्त महाइड्ढी दु, संभवासिदण्णा इमाए॥160॥

जिनत्व के बिना कोई भी ऋद्धि भवसागर से पार करने में समर्थ नहीं है। जिनत्व महाऋद्धि है, इसके आश्रित अन्य ऋद्धियाँ भी संभव हैं।

इड्ढीमा पलालं व, कम्महीणसिद्धी धण्णं व वरा।
को वि तवसी ण कंखदि, कं वि लोगिग-मिड्ढिं कयावि॥161॥

कोई भी तपस्वी किसी भी लौकिक ऋद्धि को कभी नहीं चाहता। यथार्थ में ये ऋद्धियाँ भूसे के समान हैं। कर्म से हीन सिद्धि-स्वात्मोपलब्धि धान्य के समान श्रेष्ठ है।

ग्रंथ फल

जो को वि भद्दपुरिसो पढदि सुणदे विणयेण सड्ढाए।
थोगभवेसुं णियमा, लहदि सगप्प-सासय-विहवं॥162॥

जो कोई भी भद्र पुरुष श्रद्धापूर्वक विनय से इस ग्रंथ को पढ़ते हैं, सुनते हैं वह अल्पभवों में नियम से अपनी आत्मा के शाश्वत वैभव को प्राप्त करते हैं।

ऋद्धिधारियों की वंदना

विसिट्ठतवेणं पगड-इड्ढि-धारगा महारिसी सया य।
सुद्धप्परसं लहिदुं, पणमामि हु पावहाणीए॥163॥

विशिष्ट तप से प्रकट ऋद्धियों के धारक महाऋषि को पाप की हानि व शुद्धात्मरस की प्राप्ति के लिए मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

अंतिम मंगलाचरण

मूलवसुभेयसहिदा, इड्ढी रिसी वंदेमि वसुयामे।
वसुगुणं वसुमहिं वसुणंदं लहिदुं वसुअंगेहि॥164॥

मूल आठ भेद से सहित ऋद्धियों एवं ऋद्धिधारक ऋषियों को अष्टगुण, अष्टम पृथ्वी एवं उत्तम आनंद की प्राप्ति के लिए मैं आठों पहर अष्टांग से वंदन करता हूँ।

सव्वा तित्थयरा सुद-सामण्णकेवली गणहरा थुवमि।
अण्णरिसिगणा सगप्प-सिद्धीइ इड्ढिधरा णिच्चं॥165॥

सभी तीर्थंकर, श्रुतकेवली, सामान्यकेवली, गणधर अन्य ऋषिगण व ऋद्धिधारियों की मैं स्वात्म सिद्धि के लिए नित्य स्तुति करता हूँ।

चरियचक्किं जुगपुरिस-सिरिसंतिसायरं पढमाइरियं।
धम्म-सामज्ज-णायगं, तिसंझासु णमंसामि सया॥166॥

चारित्र चक्रवर्ती, युगपुरुष, धर्मसाम्राज्य नायक प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज को मैं तीनों संध्याकाल में सदा नमस्कार करता हूँ।

लोयप्पियं सिरि-पाय-सायरं धम्मपहावगं सूरिं।
महातवस्सिं मोक्खोवायदंसायगं पणमामि॥167॥

लोकप्रिय, धर्मप्रभावक, महातपस्वी, मोक्ष के उपाय को दिखलाने वाले आचार्य श्री पायसागर जी मुजिराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

अज्झप्पजोगिं सिआवायकेसरिं अणेगंत - चक्किं।
सूरिं जयकित्तिं जिणसासणुण्णदिकरं पणमामि॥168॥

अध्यात्मयोगी, स्याद्वादकेसरी, अनेकांतचक्री, जिन-शासनोन्नतिकरा आचार्य श्री जयकीर्ति मुनिराज को मैं प्रणाम करता हूँ

भारदगोरवं महापुरिसं रट्ठसम्माणसंपत्तं।
देसभूसणं सूरिं, संघसंचालकं किट्टेमि॥169॥

राष्ट सम्मान को प्राप्त, महापुरुष, संघसंचालक, भारत गौरव आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज की मैं स्तुति करता हूँ।

सिद्धंतचक्किं रट्ठ-संतं विस्सधम्मसंपेरगं च।
सूरिं विज्जाणंदं, णाणमुत्तिं गुरुं वंदेमि॥170॥

सिद्धान्त चक्रवर्ती, राष्ट्र संत, विश्वधर्म-संप्रेरक, ज्ञानमूर्ति आचार्य श्री विद्यानंद जी गुरुदेव की मैं वंदना करता हूँ।

ग्रंथकार लघुता

सव्वबालजदिसूरी, मे गुरुपरंपराए विज्जंता।
पुण्णो दु इड्ढि-सारो, वंदे जाण किवादिट्ठीइ॥171॥

जिनकी कृपादृष्टि से ही यह ''इड्ढिसारो'' ऋद्धिसार नामक ग्रंथ पूर्ण हुआ, अपनी गुरुपरंपरा में विद्यमान उन सभी बालयति आचार्यों की मैं वंदना करता हूँ।

अप्प-सुद्धीइ रइदो, गंथो अप्पणाण-पमादेहि जदि।
चुक्केज्जा तो खमंतु, मे बहुसुद-जाणगा सूरी॥172॥

आत्म-शुद्धि के लिए यह ग्रंथ रचा गया। यदि अल्पज्ञान वा प्रमाद से कोई चूक रह गई हो तो बहुश्रुत को जानने वाले आचार्यवर मुझे क्षमा करें।

ग्रंथ-प्रशस्ति

अरिहाइ-णवदेव-गदि-गुरु-मूलदव्व-वीर-मोक्खद्धम्मि।
रायट्ठाणस्स जोहपुर-णयरे ठिदादिजिणालयम्मि॥173॥

चइत्त-किण्ह-छट्ठीइ, विसाहा-णक्खत्ते सुहजोगम्मि।
समत्तो इमो गंथो, मए सूरिवसुणंदिणा दु॥174॥ (जुम्मं)

अरिहंतादि नवदेवता (9), गति (4), गुरु (5) व मूलद्रव्य (2) ''अंकानां वामतो गतिः'' से 2549 वीरनिर्वाण संवत्, चैत कृष्ण षष्ठी के दिन विशाखा नक्षत्र, शुभ योग में राजस्थान के जोधपुर नगर में स्थित श्री आदिनाथ जिनालय में यह ग्रंथ ''इड्ढिसारो'' मुझ आचार्य वसुनंदी के द्वारा समाप्त किया गया।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

प्राकृत साहित्य			
1.	णंदिणंदसुत्तं (नंदीनंद सूत्र)	2.	अज्जसक्किदी (आर्य संस्कृति)
3.	रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)	4.	णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)
5.	जदि-किदिकम्मं (यति कृतिकर्म)	6.	धम्मसुत्तं (धर्म सूत्र)
7.	अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)	8.	जिणवरथोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
9.	तच्च-सारो (तत्त्व सार)	10.	विज्जावसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)
11.	अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)	12.	सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)
13.	रयणकंडो (प्राकृत सूक्ति कोश)	14.	मंगलसुत्तं (मंगलसूत्र)
15.	अट्ठंगजोगो (अष्टांग योग)	16.	णमोयार-महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
17.	विस्सपुज्जो दियंबरो (विश्वपूज्य दिगंबर)	18.	अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
19.	मूलवण्णो (मूलवर्ण)	20.	विस्सधम्मो (विश्व धर्म)
21.	अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)	22.	समवसरण-सोहा (समवसरण शोभा)
23.	पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)	24.	को विवेगी (विवेकी कौन)
25.	तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)	26.	कलाविण्णाणं (कला विज्ञान)
27.	अप्पसत्ती (आत्म-शक्ति)	28.	वयणपमाणत्तं (वचनप्रमाणत्व)
29.	सिरिसीयलणाहचरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)	30.	अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)
31.	असोग रोहिणी चरियं, अशोक रोहिणी चरित्र	32.	खवगराय-सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)
33.	लोगुत्तर-वित्ती (लोकोत्तर वृत्ति)	34.	पसमभावो (प्रशम भाव)
35.	समणभावो (श्रमण भाव)	36.	इड्ढिसारो (ऋद्धिसार)
37.	झाणसारो (ध्यान सार)	38.	समणायारो (श्रमणाचार)
39.	सम्मेदसिहरमाहप्पं, सम्मेद शिखर माहात्म्य	40.	जिणवयण-सारो (जिनवचन सार)
41.	अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त)	42.	विणयसारो (विनय सार)
43.	भत्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)	44.	तव-सारो (तपसार)
45.	भाव-सारो (भावसार)	46.	दाण-सारो (दानसार)
47.	लेस्सा-सारो (लेश्या सार)	48.	वेरग्ग-सारो (वैराग्य सार)
49.	णाण-सारो (ज्ञानसार)	50.	णीदि-सारो (नीति सार)
51.	धम्म-सुत्ति-संगहो (धर्म सूक्ति संग्रह)	52.	कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
53.	प्राकृत वाणी भाग-1-2-3-4		

टीका ग्रंथ			
1.	प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)	2.	वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3.	नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)	4.	श्रीनंदा टीका-सिद्धिप्रिय स्तोत्र

इंग्लिश साहित्य			
1.	Inspirational Tales	2.	Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य			
1.	मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)	2.	बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3.	शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)	4.	स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)

प्रवचन साहित्य			
1.	आईना मेरे देश का	2.	उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3.	उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4.	उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दु:खदानी)
5.	उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6.	उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7.	उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)	8.	उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9.	उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10.	उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो)
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12.	खुशी के आँसू
13.	खोज क्यों रोज-रोज	14.	गुरुत्तं भाग 1
15.	गुरुत्तं भाग 2	16.	गुरुत्तं भाग 3
17.	गुरुत्तं भाग 4	18.	गुरुत्तं भाग 5
19.	गुरुत्तं भाग 6	20.	गुरुत्तं भाग 7
21.	गुरुत्तं भाग 8	22.	गुरुत्तं भाग 9 (सोलहकारण भावना)
23.	गुरुत्तं भाग 10	24.	गुरुत्तं भाग 11
25.	गुरुत्तं भाग 12	26.	गुरुत्तं भाग 13
27.	गुरुत्तं भाग 14	28.	गुरुत्तं भाग 15
29.	गुरुत्तं भाग 16	30.	गुरुत्तं भाग 17 (बारह भावना)
31.	चूको मत	32.	जय बजरंगबली
33.	जीवन का सहारा	34.	ठहरो! ऐसे चलो
35.	तैयारी जीत की	36.	दशामृत
37.	धर्म की महिमा	38.	ना मिटना बुरा है न पिटना

39.	नारी का धवल पक्ष	40.	शायद यही सच है
41.	श्रुत निर्झरी	42.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा
43.	सीप का मोती (महावीर जयंती)	44.	स्वाति की बूँद

हिंदी गद्य रचना			
1.	अन्तर्यात्रा	2.	अच्छी बातें
3.	आज का निर्णय	4.	आ जाओ प्रकृति की गोद में
5.	आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6.	आहारदान
7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म
31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना			
1.	अक्षरक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना			
1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौंसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दु:खों से मुक्ति (वृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	समवसरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्मेदशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान

11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान
17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान
21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना	26.	अभिनव सिद्धचक्र महार्चना

प्रथमानुयोग साहित्य

1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चरित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र

31.	रामचरित्र (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी
43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (आ. श्री विद्यानंदी जी)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	अध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्रीमद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च-वियारो सारो (सि. च. आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमिचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)

27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री अमितगति जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)	32.	वसुऋद्धि
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

संपादित हिंदी साहित्य

1.	अरिष्ट निवारक त्रय विधान • नवग्रह विधान • वास्तु निवारण विधान • मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)		
2.	श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान		
3.	श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक		
4.	शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान • भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी) • सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)		
5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहढाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)

9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य			
1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु सुबंधं (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		